खण्ड 3
पुराण

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 3 पुराण

तृतीय खण्ड पुराण नामक खण्ड है। पुराणों की रचना वैदिक काल के पश्चात् हुई। पुराणों की संख्या कितनी है, यह निश्चिततया कहना असम्भव है किन्तु महापुराण अष्टादश है। यहाँ ध्यातव्य है कि वर्तमान में उन्हीं महापुराणों को पुराण के रूप में भी गिना जाता है। पुराणों के उपपुराण और औपपुराण भी हैं जिनका परिगणन तत् तत् इकाई में किया गया है। पुराणों को बताते समय तत्कालीन संस्कृति और सभ्यता का भी अध्ययन किया गया है क्योंकि पुराणों की महत्ता एवं विशेषता बिना भारतीय संस्कृति और सभ्यता के नहीं कही जा सकती है। इसके साथ ही इस इकाई में पुराणों के प्रतिपाद्य का भी अध्ययन किया गया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई १२ पुराण की परिभाषा, लक्षण और संख्या

१२.० उद्देश्य

१२.१ प्रस्तावना

१२.२ पुराण – सामान्य परिचय

१२.३ पुराण शब्द का अर्थ

१२.४ पुराण–लक्षण

  १२.४.१ दश लक्षण

१२.५ पुराणों की संख्या

१२.६ पुराणों का क्रम

१२.७ सारांश

१२.८ अभ्यास

१२.० उद्देश्य

- पुराणों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पुराण का अर्थ जान सकेंगे।
- पुराणों के लक्षण के विषय में जान सकेंगे।
- पुराणों की संख्या के विषय में जान सकेंगे।
- पुराणों के क्रम को जान सकेंगे।

१२.१ प्रस्तावना

पुराणों ने न केवल भारतीय जनमानस को ही अपने पवित्र ज्ञान से आप्लावित किया है। अपितु समस्त विश्व में इनके ज्ञान का डंका बजता रहा है। इन्होंने शिक्षा से हीन जनों में शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का प्रचार कर अपनी उपयोगिता को स्वतः सिद्ध किया है। प्रस्तुत इकाई में पुराणों का सामान्य अध्ययन किया जायेगा, जिसके अन्तर्गत पुराण क्या है, किसे कहते हैं? इनकी संख्या और क्रम का अध्ययन किया जायेगा।

१२.२ पुराण – सामान्य परिचय

इतिहास और पुराण को प्राचीन साहित्य में समान स्तर पर देखा गया है। उमाशंकर ऋषि ने संस्कृत साहित्य का इतिहास के पुराण साहित्य अध्याय में वेदों के क्लिष्ट कर्मकांड को रोचक बनाने के लिए चार प्रकार के साहित्य प्रथम इतिहास, द्वितीय पुराण, तृतीय गाथा और चतुर्थ नाराशंसी को बताया है।

पुराण का प्रयोग पुरावृत्त तथा पुरातत्व से संबंधित सृष्टि प्रलय, भूगोल, आकाश मंडल इत्यादि के विवरण के लिए किया जाता था। गाथा के अंतर्गत प्राचीन नैतिक, वास्तविक और काल्पनिक कथाएं आती हैं जैसे इंद्र वृत्र की कथा, पुरुरवा उर्वशी की

कथा, विश्वामित्र नदी संवाद इत्यादि नाराशंसी के अंतर्गत वीरों की प्रशंसा, वीर गाथाएं, वीरों के अभिनंदन इत्यादि आते थे जैसे ययाति नहुष, परीक्षित इत्यादि से संबद्ध प्रशंसा।

वैदिक युग के उक्त पारिभाषिक शब्दों को संक्षिप्त करने पर नई अर्थव्यंजना आरोपित की गई। पुराणों में पुराण शब्द में ही समस्त वेदों का अंतर्भाव कर लिया गया। जिसके पश्चात संस्कृत साहित्य में पुरानी विधाओं के पुनरुद्धार के कारण इतिहास को ऐतिहासिक काव्य के रूप में, पुराण को केवल पौराणिक ग्रंथों के रूप में, गाथा को संस्कृत कथाओं के रूप में और नाराशंसी को रामायण, महाभारत आदि वीरकाव्यों के रूप में समझा जाने लगा।

पुराण भारतीय साहित्य के भव्य प्रासाद का आधारस्तम्भ है। संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पुराण खण्ड के अनुसार– पुराण प्राचीन इतिहास मन्दिर का स्वर्ण कलश है। नानाविध ज्ञान विज्ञान सागर में संतरण करने वाले पोत का प्रकाशदीप है और मानव जाति की अनादि काल से संचित विद्याओं की सुदृढ़ मनोरम मञ्जूषा है। पुराण वस्तुतः अतीत को वर्तमान से जोड़ने वाली कनकमयी श्रृंखला है। यह भारत की धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक विचार सम्पदा का अक्षय भण्डार है। भाषा की सरलता एवं क्रमबद्ध कथा शैली के कारण प्राचीन होकर भी नवीनतम स्फूर्ति को संचारित करने में पुराण विशेष महत्व रखता है। भारत की सनातन संस्कृति पुराण साहित्य पर ही अवलम्बित है।

पुराणेतिहास के स्वरूप विश्लेषण का पुराण ने वेदों की अध्यात्मविद्या को स्पष्टतः स्वीकार कर उसे लोकजीवन में गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। प्रतीकात्मक वैदिक तत्व अवगत होने के लिए व्याख्या की अपेक्षा करता है। अतः **इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्** वेदव्यास की यह स्पष्टोक्ति पुराण के रचना की बीज रूप में देखी जाती है। इस दृष्टि से वेदविद्या का ही अवान्तररूप पुराण विद्या है। स्कन्द पुराण स्पष्टरूप से पुराण को वेद की आत्मा मानता है– **आत्मा पुराणं वेदानाम्**। पुराणों में ही वेद की प्रतिष्ठा निहित है।

वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।। (स्कन्द पुराण, प्रभाष खण्ड, २.६०)

नारद पुराण में पुराण को सभी वेदों के अर्थों का सार कहा गया है–

सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते। (नारदपुराण १.६.१००)

पुराण की सर्वशास्त्रमयता स्कन्दपुराण में स्पष्टतः उल्लिखित है। इसी कारण पुराण को पंचम वेद भी कहा गया है–

पुराणं पञ्चमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्।

यो न वेद पुराणं हि न स वेदान्न किञ्चन।।

छान्दोग्योपनिषद् में विद्याओं की सूची में पुराण का उल्लेख पञ्चम वेद के रूप में निर्दिष्ट है। इस प्रकार वेद और उपनिषद् की पृष्ठभूमि में पुराण विद्या का आविष्कार प्रतीत होता है।

धार्मिक परम्परा में वेद के पश्चात् पुराण के महत्त्व का आकलन इस कथन से भी किया जा सकता है कि अंगों सहित वेदों का अध्ययन करने वाला भी द्विज पुराणज्ञान के बिना विचक्षण नहीं हो सकता।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।

न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः।। वायुपुराण, १.१.१००

पौराणिक ज्ञान की छाया में ही वैदिक साहित्य का अर्थबोध संभव है। वेद संक्षिप्त सूत्ररूप है और पुराण उसकी व्याख्या प्रस्तुत कर मानवीय जीवन में उसकी उपयोगिता को प्रशस्त करता है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार इतिहास और पुराण के द्वारा ही वेदार्थ का विस्तार होना चाहिए। पुराणज्ञान विहीन पुरुष से वेद को प्रहार का भय होता है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।। (महाभारत, १.१.२६७)

वस्तुतः पुराण रूपी पूर्णचन्द्र से वेदों की ज्योत्स्ना ही प्रकाशित होती है। वेदों का प्रतीक तत्व पुराणों में किस प्रकार कथात्मक रूप ग्रहण करता है।

वेद, सूत्र ग्रन्थ तथा इतिहास पुराणों में पुराण स्वरूप के विषय में जो विभिन्न विवरण मिलते हैं। पुराण प्रवचन धारा के दो मुख्य सन्धि स्थल प्राप्त होते हैं।

प्रथम– कृष्ण द्वैपायन व्यास से प्रारम्भ कर पुराणों की क्रमिक धारा में प्रचलित पुराण ग्रन्थों की रचना हुई।

द्वितीय– व्यास जी से प्राचीन पुराणधारा।

डॉ. रमाशंकर भट्टाचार्य के अनुसार– अत्यन्त प्राचीन काल में पुराण एक अव्यस्थित और बहुधा विकीर्ण परम्परागत लोकवृत्तात्मक विद्या विशेषमात्र था और कृष्ण द्वैपायन व्यास ने उस परम्परागत पुराण के साथ कुछ नवीन विषयों का संयोजन कर व्यवस्थित रूप से पुराण संहिता का निर्माण किया।

ध्यातव्य है कि संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, धर्मसूत्र और प्राचीन स्मृतियों एवं महाभारत के प्राचीन अंश में सर्वत्र पुराण शब्द का प्रयोग ही प्राप्त होता है, न कि पुराण संहिता शब्द का। जिससे ज्ञात होता है कि व्यास से पहले पुराण संहिता जैसा कोई व्यववस्थित पुराणशास्त्र नहीं था। व्यास के समय विभिन्न परम्पराओं में सुरक्षित व संरक्षित पुराणों की प्रचलित बहुविध लोकवृत्तात्मक शाकल्य जने–जने और गृहे–गृहे कूजित थी। उसको लोकहित की कामना से व्यास ने पुरातन विषयों के साथ आख्यानादि नवीन विषयों को जोड़कर पुराणसंहिता की रचना की।

डॉ. हाजरा ने Did Vyasa Own His Origin to Berosse शीर्षात्मक लेख में लिखा है कि ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर भी व्यास को ईसा से पूर्वकालीन ही मानना पड़ता है। बौधायन धर्मसूत्र २.५.२७ में व्यास स्मृत हैं। तैत्तिरीयारण्यक १.६.२ में व्यास पाराशर्य का उल्लेख मिलता है। गोपथब्राह्मण १.१.२६ में व्यासः पुरोवाच कहा गया है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि व्यास की परम्परा ईसा से बहुत प्राचीन है।

१२.३ पुराण शब्द का अर्थ

व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार **पुरा भवं पुराणम्** अर्थात् पुरानी घटनायें के अर्थ से होता हैं। पुरा यह अव्यय पद है जिसकी व्युत्पत्ति है – **पुरति अग्रे गच्छति इति पुरा**। तुदादिगणपठित अग्र गमनार्थक पु धातु से औणादिक क प्रत्यय के योग से पुरा शब्द

सिद्ध होता हैं। मेदिनीकोश के अनुसार इसका प्रयोग प्रबन्ध, अतीतकाल तथा संकट अर्थों में होता है–

स्यात्प्रबन्धे पुरातीते संकटागमिके तथा। मेदिनीकोश २५

पुरा भवम् व्युत्पत्तिपरक विग्रह में पुरा अव्यय से ट्यु प्रत्यय करने से पुराण शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जो कुछ हुआ, उसे पुराण कहते हैं। पुराण के सम्बन्ध में निरुक्तकार यास्क का कथन है– **पुराणं कस्मात्? पुरा नवं भवति। (निरुक्त–नैघण्टुक काण्ड)** अर्थात् जो प्राचीनकाल में नवीन था। यास्क के इस कथन से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि जो साहित्य एक ओर पुरातनी सृष्टिविद्या वेदविद्या से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है और दूसरी ओर नित्य नये नये रूप में उत्पन्न लोक जीवन से अपना सम्बन्ध जोड़े रहता है, वही पुराण है।

पुरा पुरातनम् अनिति जीवयति बोधयति इति पुराणं ग्रन्थविशेषः। पुरा पूर्वक अदादिगण की अण् धातु से अच् प्रत्यय लगने से पुराण शब्द बनता है। यद्यपि अच् प्रत्ययान्त होने से पुराण शब्द का प्रयोग पुल्लिंग में होना चाहिए, किन्तु **पुराणं पञ्चलक्षणम् (मत्स्यपुराण ५३.६४), पुराणं ग्रन्थेभेदे च क्लीवे त्रिषु पुरातने (नानार्थरत्नमाला, पृ. ७७)** में नपुंसकलिङ्ग में पुराण शब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः व्यवहार में पुराण शब्द नपुसंक लिङ्ग मान्य है।

पुरा अतीतान् अर्थात् अणति कथयति व्युत्पत्ति में शब्दार्थक अण् धातु से पचादित्वात् अच् प्रत्यय करने से भी पुराण शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है कि प्राचीन वृत्तान्तों को कहने का ग्रन्थ। पुराण भी स्वयं उक्त अर्थ का समर्थन करता है–

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। मत्स्यपुराण ५३.७२

यद्यपि पुराण शब्द के प्रत्न, प्रतन, पुरातन, चिरन्तन आदि अनेक पर्यायवाची शब्द हैं, तथापि यहां पुराण शब्द से महर्षि व्यास रचित प्राचीन कथायुक्त अष्टादश ग्रन्थ विशेष अर्थात् पुराण संहिता का ही बोध होता है। व्युत्पत्तिपरक अर्थ के अनुसार विद्वत्समुदाय पुराण को प्राचीन ग्रन्थ विशेष मानने में प्रायः एकमत हैं।

पद्मपुराण में प्राचीन परम्परा को व्यक्त करने में समर्थ शास्त्र को पुराण कहा गया है–

पुरा परम्परां व्यक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्।। (पद्मपुराण १.२.५४)

वायुपुराण में भी प्राचीनकाल से वर्तमान पर्यन्त जीवन्त साहित्य को पुराण कहा है–

यस्मात्परा ह्यनतीदं पराणं तेन कथ्यते।

निरुक्तिमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (वायुपुपुराण १.२.३)

ब्रह्माण्ड पुराण में प्राचीन काल में ऐसा ही था, को बतलाने वाला ग्रन्थ पुराण है–

यस्मात्पुरा ह्यभूच्चौतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम्। ब्रह्माण्डपुराण १.१.१७३

निष्कर्षतः पुराणों का प्रतिपाद्य विषय प्राचीनकाल से सम्बन्धित वृतान्त है।

पुराण शब्द का प्रयोग विशेषण और संज्ञा के रूप में देखा जाता है। विशेषण के रूप में पुराण शब्द का अर्थ है पुराना, पुरातन या प्राचीन। उदाहरण के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में **"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः"** (२.२०), **त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः"** (११.३८) आदि में प्रयुक्त पुराण शब्द प्राचीन अर्थ का द्योतक है। संज्ञा के रूप

में पुराण शब्द का अर्थ है– पुरातन आख्यानों से युक्त ग्रन्थ। इस अर्थ में पुराण शब्द का प्राचीनतम प्रयोग अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। उदाहरणार्थ अधोलिखित सन्दर्भों में पुराण शब्द का प्रयोग देखा जा सकता है–

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं.... दिवि श्रितः। (अथर्ववेद ११.७.२४)

अथ नवमेऽहन् तानुपदिशति पुराणं वेदः।

सोऽयमिति किञ्चित् पुराणामचक्षीत्। (शतपथब्राह्मण १३.४.३.१३)

१२.४ पुराण लक्षण–

अमरकोश में पुराण को पञ्चलक्षण कहा गया है – **पुराणं पञ्चलक्षणम्।** वाराहपुराण के अनुसार पञ्चलक्षण के अन्तर्गत सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित पांच विषय परिगणित हैं। सर्ग से तात्पर्य सृष्टि, प्रतिसर्ग से लय और पुनः सृष्टि, वंश से देव तथा ऋषियों की वंशावली तथा वंशानुचरित से राजवंशों का इतिहास है। उपर्युक्त पांच विषय ही मुख्य रूप से पुराणों में वर्णित हैं। पुराणों के इन्हीं प्रतिपाद्य विषयों को ध्यान में रखकर अमरकोषकार ने पुराण का अपर नाम 'पञ्चलक्षण' रखा हैं। पुराण का पञ्चलक्षणत्व पुराणों में भी स्वीकृत है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंश मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ।। (वायुपुराण ४.१०)

विष्णुपुराण में पुराण का यही लक्षण है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।।

सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च ततः।। (विष्णुपुराण ३.६.२५)

स्कन्द की सूत संहिता में वाराह पुराण के समान ही पुराण का लक्षण मिलता है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।। (सूतसंहिता, १.१.३३)

अन्य पुराणों में भी प्रायः पुराण का यही लक्षण किया गया है। वस्तुतः पुराण का यह लक्षण उसके प्रतिपाद्य विषय को लक्ष्य करके किया गया है। पुराणों के विषयों का अनुशीलन यह स्पष्ट करता है कि मुख्य रूप से सभी पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पांच विषयों का ही विशद वर्णन हुआ है। इस पंचलक्षण का अभिप्राय है–यह सृष्टि किससे किस प्रकार हुई? इसका लय कहां और किस प्रकार होगा? सृष्टि के पदार्थों का उत्पत्ति क्रम किस प्रकार का है? मानव जाति के प्रमुख ऋषि और राजा किस क्रम से अधिकारारूढ़ हुए? उनके चरित्र कैसे थे और सृष्टि एवं प्रलय के बीच कितना समय लगता है? इन विषयों की विवेचना जिसके द्वारा की जाय, वही पुराण है। विचार करने पर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि पुराण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ पुराकथायुक्त ग्रन्थविशेष और पुराण प्रतिपादित पञ्चलक्षण वस्तुतः एक ही विषय की ओर संकेत करते हैं और वह विषय है – उपर्युक्त पांच तत्वों का विस्तृत वर्णन। पुराण की व्युत्पत्ति और लक्षण दोनों में इन पांच विषयों का समावेश हो जाता है अतः **पुराणं पञ्चलक्षणम्** पुराणों का समान्य लक्षण मानने में कोई आपत्ति नही है। 'पञ्चलक्षण' शब्द पुराण का इतना अनिवार्य द्योतक स्वीकृत हो चुका था कि अमरसिंह ने कोष में इस शब्द का प्रयोग बिना किसी व्याख्या के ही किया है। व्याख्याविहीन पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उसकी सार्वभौम लोकप्रियता का संकेत है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पुराण के साथ पंचलक्षण का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि अमरकोष में बिना किसी व्याख्या के ही इस शब्द का प्रयोग हुआ है। पुराण की परिभाषा में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और वंशानुचरित को मुख्य विषय स्वीकृत किया गया है। विचार दृष्टि से ज्ञात होता है कि सृष्टिविद्या पुराण का प्रमुख विषय हैं, शेष उसके पूरक हैं, अन्य चार के बिना सृष्टि का पूर्णतया वर्णन करना असम्भव ही है। मानव समाज के इतिहास को समझने के लिए सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक के क्रमबद्ध रूप को समझना ही पड़ता है। पुराण का प्रारम्भ भी सृष्टि से होकर अन्त प्रलय पर होता है। सृष्टि और प्रलय के मध्य होने वाले कालखण्डों अर्थात् मन्वन्तरों, राजवंशों और प्रतापी राजाओं का विवरण देना ही पुराण का पुराणत्व है। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्न है–

१. **सर्ग** – संसार तथा उसमें निहित विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति सर्ग कहलाती है। भागवत में सर्ग का लक्षण निम्न रूप से प्राप्त होता है –

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।

भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।। (भागवत पुराण १२.७.११)

अर्थात मूल प्रकृति में लीन गुण से क्षुब्ध होने पर महत् तत्व की सृष्टि होती है। महत् तत्व से त्रिविध अहंकार, अहंकार से पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय तथा पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति–क्रम का नाम सर्ग है।

पुराणों में सृष्टि अर्थात् सर्ग का क्रम इस प्रकार प्राप्त होता है– क्षीर सागर में भगवान् नारायण शेषनाग पर शयन कर रहे हैं, जब इनकी इच्छा सृजन की हुई तो नाभि से कमल का आविर्भाव हुआ और उस कमल से चतुर्भुज ब्रह्मा का प्राकट्य हुआ। यही ब्रह्मा सम्पूर्ण स्थावर और जगमात्मक जगत् के रचनाकार माने जाते हैं।

२. **प्रतिसर्ग** – सर्ग अर्थात् सृष्टि से विपरीत वस्तु प्रतिसर्ग अर्थात् प्रलय कहलाती है। विष्णुपुराण में प्रतिसर्ग के स्थान में प्रतिसंचार शब्द का प्रयोग मिलता है –

प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतं प्रलये तु यतः।

तस्मात प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसंचरः।। विष्णुपुराण १.२.२५

किन्तु भागवत (३.१०.१४) में प्रलय के लिए प्रतिसंक्रम शब्द का तो प्रयोग मिलता ही है साथ ही श्रीमद्भागवत में प्रतिसर्ग के स्थान में संस्था शब्द भी प्रयुक्त हुआ है –

नैमित्तिकः प्राकतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।

संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः।। श्रीमद्भागवत १२.७.१७

इस ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक। यही संस्था शब्द से अभिहित है। यह शब्द प्रतिसर्ग के समान ही संक्रम (सर्ग) से विपरीत तत्व का द्योतक है।

३. **वंश** – श्रीमद्भागवत में वंश की परिभाषा है –

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।। श्रीमद्भागवत १२.७.१६

अर्थात ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न किये गये राजाओं की भूत, वर्तमान तथा भविष्य कालिक सन्तति (सन्तान) परम्परा को वंश कहते हैं। भागवत में वंश को राजवंश तक ही सीमित रखा गया है, किन्तु अन्य पुराणों में वंश के अन्तर्गत ऋषिवंश का वर्णन भी प्राप्त होता है।

४. मन्वन्तर – यह शब्द पुराण के अनुसार सृष्टि के विभिन्न कालखण्डों का द्योतक है। चतुर्दश मन्वन्तर होते हैं और प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु होता है जिसके सहयोगी पांच पदार्थ भी होते हैं।

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।

ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते।। श्रीमद्भागवत १२.७.१५

मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार इन छः विशेषताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं।

५. **वंशानुचरित** – मनु आदि वंशों में उत्पन्न वंशधरों तथा राजाओं का विशिष्ट विवरण जिसमें रहता है, उसे वंशानुचरित कहते हैं। यहां पर मानव वंश में प्रसूत महर्षियों एवं राजाओं का चरित्र भी समाविष्ट है।

पुराणों में महर्षि चरित्र की अपेक्षा राजचरित्र का ही विशेष विवरण उपलब्ध है। राजनीतिशास्त्र में **पुराणं पञ्चलक्षणम्** का एक नया ही संकेत मिलता है जो पूर्वनिर्दिष्ट लक्षण से भिन्न है। कौटिल्य अर्थशास्त्र (१.५) की व्याख्या में जयमंगल ने किसी प्राचीन ग्रन्थ से निम्न श्लोक उद्धृत किया है–

सृष्टिप्रवृत्ति संहार–धर्म–मोक्ष प्रयोजनम्।

ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

प्रकृत श्लोक में पञ्चलक्षण की नवीन व्याख्या की गई है और धर्म को पुराण का अविभाज्य लक्षण स्वीकृत किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि मूल रूप से पुराण में धार्मिक विषयों का समावेश अभीष्ट था। **मन्वन्तराणि सद्धर्मः** कहकर भागवत ने भी मन्वन्तर के अन्तर्गत धर्म का उपन्यास न्याय माना है।

उपर्युक्त विवरण में वंश के अन्तर्गत देवों तथा ऋषियों के वंशों का भी समावेश समझना चाहिए। इन विषयों को पुराण का मौलिक वर्ण्य विषय मानने में प्रधान कारण सूत के कार्यों के साथ इसकी पूर्ण संगति है। पुराण का वाचन तथा व्याख्यान करना सूत का प्रधान कार्य था। सूत का कर्तव्य था देवों, ऋषियों, तेजस्वी राजाओं तथा लोकप्रथित महात्माओं के वंशों का धारण करना –

देवतानामृषीणां च राज्ञां चामितेजसाम्।

वंशानां धारणं कार्य श्रुतानां च महात्मनाम्।। (वायुपुराण १.३१–३२)

वस्तुतः पुराण की धारा वैदिक धारा से पृथक थी जिसके संरक्षण, संवर्धन और प्रचार–प्रसार का कार्य सूत की अधिकार सीमा के भीतर था।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में उमाशंकर ऋषि कहते हैं कि उपर्युक्त पंच लक्षण तब बने जब इन विषयों से युक्त पुराणों का रूप स्पष्ट हो चुका था। किंतु कालक्रम से पुराणों में अन्य अनेक विषय भी संकलित होने लगे और मूल पुराण का लक्षण अभिभूत हो गया था। केवल मात्र विष्णु पुराण में यह पंचलक्षण घटित होता है, जबकि अन्य पुराणों में आंशिक रूप से ही घटित होता है। कुछ ऐसे भी पुराण हैं जो उक्त लक्षणों का स्पर्श तक नहीं करते हैं। वर्तमान में पुराणों का स्वरूप दार्शनिक अथवा ऐतिहासिक नहीं अपितु धार्मिक हो गया है, जिससे अधिकांश पुराण विष्णु अथवा शिव की भक्ति उपासना को ही समर्पित है। विभिन्न देवताओं की स्तुतियां, पुण्य लाभ के लिए होने वाले व्रत, उत्सव तथा तीर्थ आदि का विस्तृत वर्णन सभी पुराणों में है। वहीं अग्निपुराण

में ज्योतिष, शरीर, विज्ञान, व्याकरण, शस्त्र प्रयोग, चिकित्सा, साहित्य शास्त्र आदि का विवरण दिया गया है।

वंशानुचरित में प्राचीन राजवंशों का विवरण प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मांडपुराण, भविष्यपुराण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण और गरुड़पुराण इसके उदाहरण हैं। सूर्यवंश और चंद्रवंश के प्रथम राजाओं से आरम्भ कर महाभारत युद्ध में भाग लेने वाले राजाओं तक वर्णन प्राप्त होता है क्योंकि विद्वानों का मानना है कि पुराण व्यास द्वारा रचित हैं और व्यास पांडवों के समकालीन हैं, जिससे राजवंशों का वर्णन तब तक भूतकाल में है। इसके पश्चात् कलियुग के राजाओं का वर्णन भविष्य काल में है। जिसमें कलियुग के शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, आंध्र तथा गुप्त वंश के राजाओं की सूची प्राप्त होती है। इसलिए पुराणों को भारत के प्राचीन राजनीतिक इतिहास के स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है। वी. ए. स्मिथ के अनुसार विष्णुपुराण में मौर्यवंश तथा मत्स्यपुराण में आंध्रवंश, वायुपुराण में चंद्रगुप्त प्रथम के काल की राज्य व्यवस्था का वर्णन है। पुराण राजाओं की सूचियों में आभीर, गर्दभ, शक, यवन, तुषार, हूण इत्यादि शूद्र तथा म्लेच्छ राजाओं की वंशावली को प्रस्तुत करते हैं।

१२.४.१ दश लक्षण

श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में दशलक्षण महापुराण के तथा पञ्चलक्षण क्षुल्लक पुराण के कहे गये हैं। भागवत के द्वादश स्कन्ध के अनुसार ये दश लक्षण हैं –

सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।

वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।। भागवत १२.७.६

वस्तुतः उपर्युक्त दश लक्षण पूर्वोक्त पञ्चलक्षण के विस्तार मात्र ही हैं। इन में कोई ऐसी नयी बात नहीं है, जो पूर्वोक्त पांच लक्षणों से बोधित न होती हो। भागवत के दशम स्कन्ध में सर्ग, प्रतिसर्ग (प्रलय संस्था), वंश, वंशानुचरित और मन्वन्तर इन पांच लक्षणों का निरूपण इन्हीं शब्दों में किया गया है। अवशिष्ट जो पांच हैं उनमें विसर्ग सृष्टि का ही अवान्तर भेद है। अपाश्रय शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है और वह ईश्वर सृष्टि का निर्माता है। अतः सृष्टि वर्णन में उसका अन्तर्भाव हो सकता है। हेतु शब्द से अभिहित कर्म वासना सृष्टि की कारण सामग्री के अन्तर्गत है। अतः वह भी सृष्टिवर्णन में ही अन्तर्भूत होती है। वृत्ति शब्द से कथित परस्पर उपमर्दकभाव स्पष्ट रूप से वंशानुचरित में अन्तर्भूत होता है। रक्षा भी वंशानुचरित के ही अन्तर्गत है क्योंकि इसमें भगवान् के अवतारों का वर्णन है और ये अवतार किसी न किसी वंश में ही होते हैं। अतः वंशानुचरित में अवतारों का भी संग्रह अभिप्रेत है। फलतः यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों के ये दश लक्षण पूर्वोक्त पांच लक्षणों के ही अन्तर्भूत हैं। भागवत आदि में इनके निरूपण का अभिप्राय है। इन पुराणों में भगवत् चरित का वर्णन ही मुख्य प्रयोजन है, जैसा कि भागवत के प्रारंभ में उल्लेख है। अतः इनमें भगवत् चरित चित्रण की प्रमुखता से उनकी उपासना के अंगों को पृथक समझाने के लिए परिगणित किया गया है। इसी सन्दर्भ में यह निर्देश करना भी प्रासंगिक है कि उपर्युक्त पांच विषयों के अतिरिक्त लोकोपयोगी होने के कारण पुराणों में चार विषयों का विशेष रूप से संग्रह किया गया है। ये विषय हैं– आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि। विष्णु पुराण में इन चारों विषयों से युक्त पुराण संहिता का स्पष्ट उल्लेख है –

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।

पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः।। ३.६.१५

आख्यान और उपाख्यान की परिभाषा विष्णुपुराण की श्रीधरी टीका में दी गयी है। स्वयं देखी हुई बात की कथा आख्यान है और सुनी हुई बात का कथन उपाख्यान है।

स्वयंदृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।

श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।। – विष्णुपुराण, श्रीधरीटीका

वेदों में जो आख्यायिकायें संकेत रूप से आयीं हैं, उनका विस्तार पुराणों में किया गया है। उन्हें ही 'आख्यान' कहना चाहिए। उपाख्यान वे हैं जो वेद या प्राचीन वाङ्मय में संकेतित नहीं है, पुराणों में ही उनका संकलन हुआ है। नल आदि राजाओं के चरित ऐसे ही उपाख्यान हैं। अतिरिक्त विषयों में तीसरा स्थान गाथा का है जो किसी महापुरुष के अनुभव वाक्य हैं। यद्यपि कल्प शुद्धि पुराणों के मुख्य लक्षण में ही आती हैं, तथापि इस अतिरिक्त विषय के रूप में गृहीत कल्प शुद्धि का आशय धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित कल्पशुद्धि है।

१२.५ पुराणों की संख्या

भारतीय ज्ञान परम्परा में पाते हैं कि महाभारत में १८ पर्व हैं, भगवद्गीता के अध्यायों की संख्या १८ है तथा भागवत पुराण की श्लोक संख्या १८ हजार है। इसी प्रकार पुराणों की संख्या भी १८ ही है। उपपुराण भी १८ हैं। विद्वज्जन पुराणों की अष्टादश संख्या को सहेतुक मानती है। अष्टादश संख्या होने का तात्पर्य निम्नलिखित है –

क) पुराण के पञ्चलक्षण में सृष्टितत्व का वर्णन प्रमुख है। इसी सृष्टिवर्णन के विकसन में शेष चार–प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश तथा वंशानुचरित का समावेश किया गया है। पुराण की अष्टादश संख्या इस सृष्टि तत्व से सम्बद्ध है। शतपथ ब्राह्मण और यजुर्वेद में १२ मास, ५ ऋतु और एक संवत्सर परिगणित है, जिनकी सम्मिलित संख्या १८ है। इस प्रकार सृष्टि से १८ संख्या के सम्बद्ध होने के कारण पुराणों का अष्टादशत्व युक्तिसंगत है।

ख) वेद में सृष्टि का आरम्भ वैदिक छन्दों में स्वीकृत है। वेद के सात छन्दों में गायत्री तथा विराट की प्रधानता है, जिनका सृष्टि तत्व से गहरा संबंध है। गायत्री पृथ्वीस्थानीया प्रकृतिरूपा है और विराट धुस्थानीय पुरुष रूप है। (धौष्पिता पृथिवी माता) गायत्री के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर और विराट के दस अक्षर मिलकर १८ संख्या होती है। परिणामतः छन्दः सृष्टितत्व की दृष्टि से सृष्टि प्रतिपादक पुराणों की १५ संख्या समुचित है।

ग) दृश्य ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ निवेश दृष्टि से तीन लोकों से सम्बद्ध है– पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश। प्रत्येक पदार्थ की छः अवस्थाएं हैं– सत्ता, उत्पत्ति, वृद्धि, पक्वता, हास तथा विनाश । ये छहों अवस्थायें त्रिलोक के समस्त पदार्थों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं। पुराण इन पदार्थों के सर्ग प्रतिसर्ग (सृष्टि प्रलय) का वर्णन करता है। अतः उसकी १८ संख्या न्याय संगत है।

ङ) पुराण मुख्यतः पुराण पुरुष परमात्मा का प्रतिपादन करता है। आत्मा स्वरूपतः एक है, किन्तु उपाधि तथा अवस्था भेद से वह १८ प्रकार का होता है। इन अष्टादश आत्मा का प्रतिपादन होने से पुराण की अठारह संख्या मानी गई है।

पुराणों का विभाजन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राचीन एवं परवर्ती रूप में किया जाता है, जिसमें प्राचीन का अर्थ पंचलक्षण को स्वीकारना है। तदानुसार वायुपुराण, ब्रह्मापुराण और विष्णुपुराण को प्राचीन कहा गया है। इनसे इतर पुराणों में उक्त पंच लक्षण का अनुपालन न होने से परवर्ती पुराण कहलाते हैं। पुराणों का एक अन्य विभाजन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

सात्विकता, तामस और राजस के रूप में भी किया जाता है, जो क्रमशः विष्णु, शिव और ब्रह्मा अथवा अन्य देवताओं के महत्व के आधार पर है। उमाशंकर शर्मा ऋषि इस विभाजन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक मानते हैं। इसके अनुसार यह विभाजन निम्न है –

क. **सात्विक (वैष्णव) पुराण** – विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म, वराह।

ख. **तामस (शैव) पुराण** – मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, अग्नि, स्कन्द।

ग. **राजस (ब्राह्म) पुराण** – ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्, मार्कण्डेय, ब्रह्म, वामन, भविष्य।

देवताओं की प्रशस्ति के संबंध में कहा गया है –

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।

चतुर्भिः भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिरू।। (स्कन्दपुराण केदारखण्ड, १)

मत्स्यपुराण (५३.६८–६) में सात्विक पुराणों में विष्णु का, राजस पुराणों में ब्रह्मा का, तामस पुराणों में अग्नि और शिव का एवं संकीर्ण पुराणों में सरस्वती और पितरों का महक में प्रमुख रूप से दिखाया गया है।

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।

राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।।

तद्वदग्नेषु माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।

सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।

इन परम्परागत विभाजनों से अधिक सन्तोषप्रद वर्गीकरण आधुनिक दृष्टि से महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने किया है जो पुराणों की विषय वस्तु की गम्भीर समीक्षा पर आश्रित है। उन्होंने विषय–वस्तु के आधार पुराणों को निम्नाङ्कित छह वर्गों में रखा है

१) प्रथम वर्ग में समस्त वाङ्मय के कोष (विश्वकोष) का रूप धारण करने वाले गरुड, अग्नि तथा नारद पुराण रखे जा सकते हैं। इनमें संस्कृत भाषा के ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी सभी श्रेष्ठ ग्रन्थों का सार प्रस्तुत है जैसे– आयुर्वेद, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, संगीत, ज्योतिष आदि। अन्य पौराणिक विषय भी इनमें निहित हैं।

२) द्वितीय वर्ग में पद्यम स्कन्द तथा भविष्य पुराण हैं। इन पुराणों की मौलिक सामग्री बार बार किये गये संशोधनों के कारण लुप्तप्राय हो गयी है।

३) तृतीय वर्ग के पुराणों में दो बार सामान्य संशोधन किये गये थे। इनमें ब्रह्मवैवर्त पुराण आता हैं। इन पुराणों में मौलिक रचना ग्रन्थ के बीच में है तथा ओर अतिरिक्त सामग्री का संकलन दो–दो बार किया गया।

४) चतुर्थ वर्ग ऐतिहासिक पुराणों का है जिसमें ब्रह्माण्ड तथा लुप्त हो चुके हैं, दोनों निहित हैं।

५) पञ्चम वर्ग में साम्प्रदायिक पुराणों की गणना करायी गयी है– लिङ, वामन, मार्कण्डेय। लिङ्गपुराण में शिव के प्रतीक के रूप में लिङ्गपूजा का महत्त्व निरूपित है।

६) षष्ठ वर्ग में शास्त्रीजी ने उन पुराणों को रखा है जो प्राचीन थे किन्तु इतनी बार संशोधित हुए कि इनका स्वरूप नष्ट हो गया। इनमें वराह, कूर्म तथा मत्स्य पुराण

हैं। विष्णु के इन अवतार के द्वारा ही सम्पूर्ण प्रवचन की अपेक्षा इन पुराणों में की जाती है किन्तु वराह द्वारा वराहपुराण के केवल आधे भाग का ही प्रवचन हुआ है, मत्स्यपुराण में मत्स्य केवल तृतीयांश से ही सम्बद्ध और कूर्मपुराण का अष्टमांश मात्र कूर्म प्रोक्त है।

इस विभाजन में भी कुछ असंगतियाँ हैं किन्तु अद्यावधि किये गये विभाजन में सन्तोषप्रद है। विष्णुपुराण को इसमें स्थान नहीं दिया गया है क्योंकि पञ्चलक्षण पर सर्वाधिक खरा उतरने के कारण यह प्राचीनतम रूप में है।

१२.६ पुराणों का क्रम

पुराण का विकास महापुराण और उपपुराण के रूप में हुआ। इनमें महापुराण प्राचीनतर हैं। अष्टादश पुराणों का एक नियत क्रम है। पुराणों में सभी पुराणों के नाम तथा उनका ग्रन्थ–परिमाण प्राप्त होते हैं। वे नाम प्रायः क्रम से ही हैं। किन्तु क्वचिद् पुराणों का क्रमभेद भी देखा जाता है। देवीपुराण में अति संक्षेप में पुराणों का नाम निर्देश एक ही श्लोक में प्रस्तुत किया गया है–

मद्वयं भद्वयं चौव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।

अनापकूस्कलिङ्गानि पुराणानि विदुर्बुधाः॥

अर्थात् मकार से दो मत्स्य और मार्कण्डेय पुराण, भकार से भी दो भागवत और भविष्य पुराण, ब्र से ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त और ब्रह्माण्ड पुराण, वकारादि चार पुराण विष्णु, वायु, वामन और वराह पुराण, अकार से अग्निपुराण, ना से नारदपुराण, पकार से पद्मपुराण, कू से कूर्मपुराण, स्क से स्कन्दपुराण, लि से लिङ्गपुराण, गकार से गरुडपुराण हैं। यहां कोई विशेष क्रम नहीं है। पुराणों का क्रम निम्न है–

1. ब्रह्मपुराण
2. पद्मपुराण
3. विष्णुपुराण
4. वायुपुराण अथवा शिवपुराण
5. भागवतपुराण
6. नारदपुराण
7. मार्कण्डेय पुराण
8. अग्निपुराण
9. भविष्यपुराण
10. ब्रह्मवैवर्तपुराण
11. लिङ्गपुराण
12. वराहपुराण
13. स्कन्दपुराण
14. वामनपुराण
15. कूर्मपुराण

16. मत्स्यपुराण
17. गरुडपुराण
18. ब्रह्माण्डपुराण

१२.७ सारांश

पुराणों का मनन करने से ज्ञात होता है कि इनको एक नियत क्रम में रखने का रहस्यमय कारण है। शास्त्रों में दो प्रकार से क्रम चलता है – आरोह और अवरोह क्रम। जिसे नीचे से ऊपर को जाना और ऊपर से नीचे को उतरना कहा जा सकता है। दृश्य कार्य के माध्यम से उसकी कारण परम्परा में जिज्ञासा के अनुसार प्रवेश करते जाना, आरोह क्रम कहलाता है। और मूल तत्त्व को प्रारम्भ में कहकर उसका क्रम से स्थूल विस्तार को कहना अवरोह क्रम कहलाता है। पुराणों में आरम्भ से दशम पुराण तक आरोह क्रम तथा उससे आगे अन्त तक अवरोह क्रम है।

पुराणों ने वैदिक परंपरा से लेकर आधुनिक काल तक मानव जाति को प्रेरित, सुसंस्कृत, समृद्ध एवं ज्ञानवान् बनाया है। इसीलिए आज के इस संगणक युग में भी मानव जाति इस अनुपम ज्ञान की धरोहर को अपने अंदर समेटे हुए हैं। पुराण अर्थात् **पुरा नवं भवति इति पुराणम्, पुरा पुरातनं अनिति जीवयति बोधयति इति पुराणं ग्रन्थविशेषः।** भारतीय पुराणों का अध्ययन करते समय एक शंका सभी विद्वानों के समक्ष उपस्थित हुई है वह यह कि पुराण का वास्तविक लक्षण क्या है ? कुछ लोग पुराण के पांच लक्षण स्वीकार करते हैं तथा कुछ अन्य आचार्य 10 लक्षण बताते हैं? उसी को स्पष्ट करते हुए दोनों का मत दिया है। आचार्यों ने 18 पुराणों को ही स्वीकार किया है, इसमें आचार्य तर्क देते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा में महाभारत में भी 18 पर्व है तथा श्रीकृष्ण द्वारा कही गई भगवद्गीता में अध्यायों की संख्या भी अट्ठारह है तथा भागवत पुराण में श्लोकों की संख्या 18000 मानी गई है। इसी प्रकार पुराणों की संख्या भी अट्ठारह ही माननी चाहिए।

१२.८ अभ्यास

१. पुराण किसे कहते हैं?
२. पुराण के पाँच लक्षण लिखिए।
३. पुराण के दस लक्षणों का विवरण दीजिए।
४. पुराण कितने हैं और कौन से हैं।

इकाई १३ पुराण, महापुराण में अन्तर और विविध पुराण

१३.० उद्देश्य

१३.१ प्रस्तावना

१३.२ पुराण और महापुराण के बीच अंतर

१३.२.१ महापुराण

१३.३ विविध पुराण

१३.३.१ उपपुराणों की संख्या एवं नाम

१३.३.२ औपपुराण

१३.३.३ अन्य औपपुराण

१३.४ अन्य प्रमुख पुराण

१३.५ सारांश

१३.६ अभ्यास

१३.० उद्देश्य

१. महापुराण के बारे में जानेंगे।

२. पुराण और महापुराण के बीच अंतर को समझेंगे।

३. उपपुराण की संख्या को जानेंगे।

४. उपपुराण के विषय में समझेंगे।

५. औपपुराण तथा अन्य पुराण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

६. महापुराण शब्द से क्या अभिप्राय है यह जान सकेंगे।

१३.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम पुराणों के साथ–साथ महापुराण के बारे में भी जानेंगे। पुराण एवं महापुराण के बीच क्या संबंध अथवा अंतर होता है इसको भी समझेंगे। इन्हीं के साथ साथ पुराण और कितने प्रकार के होते हैं जैसे उपपुराण, औपपुराण तथा विविध एवं अन्य पुराणों के बारे में विस्तार से जान सकेंगे। इन सभी पुराणों के अंदर क्या क्या विशेष विषय सामग्री है, इसका अवलोकन कर सकेंगे तथा इन सभी पुराणों के बीच में क्या क्या अंतर है, जिससे इनको विविध श्रेणियों में बांटा गया, इसका भी यथार्थ अध्ययन कर सकेंगे।

१३.२ पुराण और महापुराण के बीच अंतर

पुराण, हिन्दुओं के धर्म सम्बन्धी आख्यान ग्रन्थ हैं, जिनमें संसार ऋषियों राजाओं के वृत्तान्त आदि हैं। ये वैदिक काल के बहुत समय बाद के ग्रन्थ हैं, जो स्मृति विभाग में

आते हैं। भारतीय जीवन धारा में जिन ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है उनमें पुराण प्राचीन भक्ति ग्रन्थों के रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। अठारह पुराणों में अलग अलग देवी देवताओं को केन्द्र मानकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, कर्म और अकर्म की गाथाएँ कही गयी हैं। कुछ पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक का विवरण दिया गया है।

पुराण का शाब्दिक अर्थ है, प्राचीन या पुराना। पुराणों की रचना मुख्यतः संस्कृत में हुई है, किन्तु कुछ पुराण क्षेत्रीय भाषाओं में भी रचे गए हैं। हिन्दू और जैन दोनों ही धर्मों के वाङ्मय में पुराण मिलते हैं।

पुराणों में वर्णित विषयों की कोई सीमा नहीं है। इसमें ब्रह्माण्डविद्या, देवी देवताओं, राजाओं, नायकों, ऋषि मुनियों की वंशावली, लोककथाएँ, तीर्थयात्रा, मन्दिर, चिकित्सा, खगोल शास्त्र, व्याकरण, खनिज विज्ञान, हास्य, प्रेमकथाओं के साथ साथ धर्मशास्त्र और दर्शन का भी वर्णन है।

पुराणों में विष्णु, वायु, मत्स्य और भागवत में ऐतिहासिक वृत्त, राजाओं की वंशावली आदि के रूप में बहुत कुछ मिलते हैं। ये वंशावलियाँ यद्यपि बहुत संक्षिप्त हैं और इनमें परस्पर कहीं–कहीं विरोध भी हैं, परंतु फिर भी ये इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पुराणों की ओर ऐतिहासिकों ने इधर विशेष रूप से ध्यान दिया है और वे इन वंशावलियों की सत्यता पर शोध कर रहे हैं

पुराण का शाब्दिक अर्थ है – प्राचीन आख्यान या पुरानी कथा। 'पुरा' शब्द का अर्थ है – अनागत एवं अतीत। 'अण' शब्द का अर्थ होता है – कहना या बतलाना।

सांस्कृतिक अर्थ से हिन्दू संस्कृति के वे विशिष्ट धर्मग्रन्थ जिनमें सृष्टि से लेकर प्रलय तक का इतिहास वर्णन शब्दों से किया गया हो, पुराण कहे जाते है। पुराण शब्द का उल्लेख वैदिक युग के वेद सहित आदितम साहित्य में भी पाया जाता है अतः ये सबसे पुरातन (पुराण) माने जा सकते हैं। अथर्ववेद के अनुसार पुराणों का आविर्भाव ऋक्, साम, यजुस् और छन्द के साथ ही हुआ था।

शतपथ ब्राह्मण (१४.३.३.१३) में तो पुराण वाङ्मय को वेद ही कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् ने भी पुराण को वेद कहा है।

अमर कोष आदि प्राचीन कोषों में पुराण के पाँच लक्षण माने हैं –

१. सर्ग – पंचमहाभूत, इन्द्रियगण, बुद्धि आदि तत्त्वों की उत्पत्ति का वर्णन।

२. प्रतिसर्ग – ब्रह्मादि स्थावरान्त संपूर्ण चराचर जगत् के निर्माण का वर्णन।

३. वंश – सूर्यचन्द्रादि वंशों का वर्णन।

४. मन्वन्तर – मनु, मनुपुत्र, देव, सप्तर्षि, इन्द्र और भगवान् के अवतारों का वर्णन।

५. वंशानुचरित – प्रति वंश के प्रसिद्ध पुरुषों का वर्णन।

सृष्टि के रचनाकर्ता ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम जिस प्राचीनतम धर्मग्रन्थ की रचना की, उसे पुराण के नाम से जाना जाता है।

पुराण मनुष्य को धर्म एवं नीति के अनुसार जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। पुराण मनुष्य के कर्मों का विश्लेषण कर उन्हें दुष्कर्म करने से रोकते हैं। पुराण वस्तुतः वेदों का विस्तार हैं। वेद बहुत ही जटिल हैं। अतः वेदव्यास जी ने कहा है, "**पूर्णात् पुराण**" जिसका अर्थ है, जो वेदों का पूरक हो, वेदों की जटिल भाषा में कही गई

बातों को पुराणों में सरल भाषा में समझाया गया हैं। पुराण साहित्य में अवतारवाद को प्रतिष्ठित किया गया है।

इस प्रकार पुराण मानव संस्कृति को समृद्ध करने तथा सरल बनाने मैं अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं तथा इनका प्रचार भी वेदव्यास जी के कारण जन जन तक सरल भाषा में हो पाया है।

१३.२.१ महापुराण

महापुराणों के लेखक का नाम व्यास (कृष्णद्वैपायन, वेदव्यास) है। वे पराशर ऋषि के पुत्र थे। उनकी माता सत्यवती थीं जिनका पालन यमुना के द्वीप में मल्लाहों के राजा दासराज के द्वारा हुआ था। वे वस्तुतः चेदिराज वसु की कन्या थीं। वेदव्यास को यमुनाद्वीप में जन्म के कारण द्वैपायन, शरीर से कृष्णवर्ण होने के कारण कृष्णमुनि तथा वैदिक मन्त्रों को याज्ञिक उपयोग के लिए चार वेदों में विभक्त करने के कारण वेदव्यास भी कहा गया है। महाभारत की कथा के अनुसार धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर इन्हीं से नियोग द्वारा उत्पन्न हुए थे। व्यास ने तीन वर्षों तक निरन्तर परिश्रम से महाभारत जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की थी।

महापुराणों के क्रम का आधार श्रीमद्भागवत को माना गया है

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम्।

नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम्।

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।

वाराहं मात्स्यं कौमं ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ।। (भागवत पु. १२ध्७ध्२३–२४)

(१. ब्रह्म २. पद्म ३. विष्णु ४. शिव ५. लिङ्ग ६. गरुड ७. नारद ८. भागवत ६. अग्नि १०. स्कन्द ११. भविष्य १२. ब्रह्मवैवर्त १३. मार्कण्डेय १४. वामन १५. वराह १६. मत्स्य १७. कूर्म १८. ब्रह्माण्ड)

ऊपर बताए गए पुराणों की संख्या नामक खंड में इस विषय पर चर्चा की गई है कि पुराणों की संख्या कितनी है तथा आचार्यों ने कितनी मानी है कुल मिलाकर आचार्य १८ पुराण तथा १८ उपपुराण तथा कुछ अन्य पुराणों का भी उल्लेख करते हैं। अब इन सभी पुराणों में जो पुराण आकार तथा विषय वस्तु में बृहद अर्थात महान है उनको महापुराण कहा गया है वह महापुराण कौन कौन से हैं उनको एक बार पुनः दिग्दर्शन के लिए यहां प्रस्तुत किया जा रहा है–

१. ब्रह्म पुराण

२. पद्म पुराण

३. विष्णु पुराण

४. वायु पुराण

५. भागवत पुराण

६. नारद पुराण

७. मार्कण्डेय पुराण

८. अग्नि पुराण

९. भविष्य पुराण

१०. ब्रह्मवैवर्त पुराण

११. लिंग पुराण

१२. वराह पुराण

१३. स्कन्द पुराण

१४. वामन पुराण

१५. कूर्म पुराण

१६. मत्स्य पुराण

१७. गरुड़ पुराण

१८. ब्रह्मांड पुराण**महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुनेः।**

तथा चोपपुराणानि मुनिभिरू कथितानि च।। विष्णु पुराण ३.६.२४

इन्हीं १८ पुराणों को महापुराण की संज्ञा दी गई है, शब्द साम्य को देखते हुए महापुराण के विषय में कुछ चर्चा जैन संप्रदाय के आचार्यों ने भी की है, उसको भी यहीं पर स्पष्ट कर देना अनुचित नहीं होगा।

महापुराण जैन धर्म से संबंधित दो भिन्न प्रकार के काव्य ग्रंथों का नाम है, जिनमें से एक की रचना संस्कृत में हुई है तथा दूसरे की अपभ्रंश में। संस्कृत में रचित महापुराण के पूर्वार्ध (आदिपुराण) के रचयिता आचार्य जिनसेन हैं तथा उत्तरार्ध (उत्तरपुराण) के रचयिता आचार्य गुणभद्र। अपभ्रंश में रचित बृहत् ग्रंथ महापुराण के रचयिता महाकवि पुष्पदन्त हैं। इस महाग्रंथ की पुष्पिका में स्वीकृत मुख्य नाम त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रह है तथा अपर नाम महापुराण है। इसके आदि भाग (आदिपुराण) के रचयिता आचार्य जिनसेन तथा उत्तर भाग (उत्तरपुराण) के रचयिता आचार्य जिनसेन के शिष्य आचार्य गुणभद्र हैं।

जिनसेन स्वामी ने सभी ६३ शलाका पुरुषों का चरित्र लिखने की इच्छा से महापुराण का प्रारंभ किया था, परंतु बीच में ही शरीरान्त हो जाने से उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी और महापुराण अधूरा रह गया जिसे उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्य गुणभद्र ने पूरा किया। महापुराण के दो भाग हैं, एक आदिपुराण और दूसरा उत्तरपुराण। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ या ऋषभदेव का चरित्र है और उत्तर पुराण में शेष २३ तीर्थंकरों तथा अन्य शलाका पुरुषों का। आदिपुराण में बारह हजार श्लोक तथा ४७ पर्व या अध्याय हैं। इनमें से ४२ पर्व पूरे तथा ४३वें पर्व के ३ श्लोक आचार्य जिनसेन के और शेष चार पर्वों के १६२० श्लोक उनके शिष्य आचार्य गुणभद्र द्वारा रचित हैं। इस तरह आदिपुराण के १०,३८० श्लोकों के रचयिता आचार्य जिनसेन हैं।

आदिपुराण जैनागम के प्रथमानुयोग ग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। विविध विषयों का अपने ढंग से विवेचन करने के अतिरिक्त आचार्य जिनसेन ने अपने से पूर्ववर्ती सिद्धसेन, समंतभद्र, श्रीदत्त, यशोभद्र, प्रभाचंद्र, शिवकोटि आदि सोलह विद्वानों का भी उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त देशविभाग में सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, कुरु, काशी आदि प्रदेशों का भी विवरण आया है।

उत्तर पुराण महापुराण का पूरक भाग है। इसमें अजितनाथ से आरंभ कर २३ तीर्थंकर, सगर से आरंभ कर ११ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण तथा उनके

काल में होने वाले विशिष्ट पुरुषों के कथानक दिये गये हैं। इन विशिष्ट कथानकों में कितने ही कथानक इतने रोचक ढंग से लिखे गये हैं कि उन्हें प्रारंभ करने पर पूरा किये बिना बीच में छोड़ने की इच्छा नहीं होती। यद्यपि आठवें, सोलहवें, बाईसवें, तेईसवें और चौबीसवें तीर्थंकर को छोड़कर अन्य तीर्थंकरों के चरित्र अत्यंत संक्षिप्त रूप से लिखे गये हैं परंतु वर्णन शैली की मधुरता के कारण वह संक्षेप भी अरूचिकर नहीं होता है। इस ग्रंथ में न केवल पौराणिक कथानक ही है किंतु कुछ ऐसे स्थल भी हैं जिनमें सिद्धांत की दृष्टि से सम्यक् दर्शन आदि का और दार्शनिक दृष्टि से सृष्टि कर्तृत्व आदि विषयों का भी अच्छा विवेचन हुआ है। अपभ्रंश भाषा में रचित महान ग्रंथ 'महापुराण' महाकवि पुष्पदंत की लेखनी से प्रसूत अमर काव्य है। वर्तमान में उपलब्ध महापुराण बृहद आकार के है। इसीलिए जैन संप्रदाय में जैनी आचार्यों ने तथा अन्य आचार्यों द्वारा लिखित आकार में बृहद ग्रंथो को महापुराण की संज्ञा दी है।

इस प्रकार पुराण और महापुराण के बारे में पढ़ने के बाद हमे कुछ तथ्य स्पष्ट हो जाते है। जैसे—

१. पुराणों का उल्लेख वैदिक काल से ही प्राप्त होने लगता है किन्तु महापुराणों का महाभारत के कर्ता कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा हुआ।

२. पुराणों की संख्या अनेक हो सकती है लेकिन महापुराण १८ (अट्ठारह) ही है।

३. पुराण संक्षिप्त है तथा महापुराण बृहत है।

४. पुराण विषय वस्तु की दृष्टि से संक्षिप्त तथा महापुराण में विषयों की भरमार है।

५. विद्वानों की मान्यता है कि कुछ परवर्ती पुराण बोपदेव ने लिखे है, किन्तु महापुराण महर्षि व्यास के द्वारा ही लिखे गए है।

६. पुराणों में अनेक विषयों का संकलन प्राप्त होता है, अपितु महापुराण में कुछ चयनित विषयों का ही विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है।

१३.३ विविध पुराण

उपपुराणों के स्रोत महापुराण ही हैं इसमें किसी की विमति नहीं है। परन्तु महापुराणों की कथावस्तुओं को कहीं पर संक्षिप्त कर दिया गया है तो कहीं पर विस्तृत कर दिया गया है। विलक्षणता एवं चमत्कार लाने हेतु कहीं कहीं पर कथावस्तु का परिवर्तन कर दिया गया है। अतः उपपुराणों का रसास्वाद अन्य पुराणों की अपेक्षा भिन्न ही हैं। स्कन्दपुराण उपपुराणों की मान्यता को निम्न प्रकार से स्वीकार करता है।

तथैवोपपुराणानि यानि चोक्तानि वेधसा। स्कन्द.पु. रेवाखण्ड १.५४

१३.३.१ उपपुराणों की संख्या एवं नाम

महापुराणों में उपलब्ध सूची के अनुसार सर्वत्र उप पुराणों की संख्या अठारह ही हैं, परन्तु पुराणों के नाम में पर्याप्त अन्तर लक्षित हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार—

अष्टादशपुराणानामेवमेवं विदुर्बुधाः।

एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः ।। (ब्र.वै. श्रीकृष्ण जन्मखण्ड १३१.२२)

इस बात का समर्थन स्कन्द पुराण भी करता है–

पाराशरं भागवतं कौमञ्चाष्टादश क्रमात। (स्क.पु. रेवाखण्डे १.५८)

पद्मपुराण के अनुसार उपपुराणों का क्रम इस प्रकार है–

तथा चोपपुराणानि कथयिष्याम्यतः परम्।

आद्यं सनत्कुमाराख्यं नारसिंहमतः परम्।।

तृतीयं माण्डमुद्दिष्टं दौर्वाससमथैव च।

नारदीयमथान्यच्च कापिलं मानवं तथा।।

तद्वदौशनसं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततः परम्।

वारुणं कालिकास्वानं माहेशं साम्बमेव च।।

सौरं पाराशरं चौव मारीचं भार्गवायम्। पा

कौमारं च पुराणानि कीर्तितान्यष्ट वै दश।। पद्म महा.पु. पातालखण्डे ११३६६३–६७

(१. सनत्कुमार २. नारसिंह ३. आण्ड ४. दौर्वासस ५. नारदीय ६. कपिल ७. मानव ८. औशनस ६. ब्रह्माण्ड १०. वारुण ११. कालिका १२. माहेन १३. साम्ब १४. सौर १५. पाराशर १६. मारीच १७. भार्गव १८. कौमार)

इस प्रकार विभिन्न पुराणों में उपपुराणों की सूची मिलती है जिनमें से प्रमुख पुराण हैं– स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में सूतसंहिता, सौर संहिता, देवीभागवत, गरुडपुराण, वायुपुराण, कूर्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण। ऐसे अनेक उपपुराण हैं जिनके नाम मात्र विभिन्न पुराणों में सूचित हैं परन्तु वे पुराण अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं– सनत्कुमार, स्कान्द, दौर्वासस, नारदीय, वामन, औशनस, ब्रह्माण्ड, माहेश्वर, मानव, नन्दिकेश्वर, आखेटक, नान्द, प्रभासक, लीलावती, एकपाद, शौकेय, बार्हस्पत्य, भागवत, कौर्म, काली, आण्ड, माहेश, कौमार, आदित्य, शौक्र, वायवीय, भास्कर, पाद्म, वृहन्नन्दीश्वर, गरुड, बृहन्नारसिंह, बृहद्वैष्णव, लघुभागवत, मृत्युञ्जय आङ्गिरस, अम्बिका, शिवरहस्य, सूर्य, भगवती भागवत, हंस, वृहदौशनस एवं बृहद् रुद्र।

इसी प्रकार नब्बे से अधिक उपपुराणों के नाम मिलते हैं। डॉ. विल्सन ने– विष्णु पुराण की भूमिका में उपपुराण की संख्या को शताधिक माना है। कुछ विद्वानों ने उप पुराणों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है –

१. वैष्णव
२. शैव
३. शाक्त
४. सौर
५. गाणपत्य

१३.३.२ औपपुराण

महापुराण एवं उपपुराण के साथ साथ या अनन्तर, पुराण लिखने का क्रम निरन्तर चलता रहा, जिसके फलस्वरूप औपपुराण भी पुराणवाङ्मय के साहित्य को समृद्ध करते रहें। बृहद्विवेक में औपपुराण की सूची कुछ इस प्रकार दी गई है–

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत्।

आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च।।

कौम भागवतं ज्ञेयं वाशिष्ठं भार्गवं तथा।

मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः।।

बृहद्धर्मं परानन्दं वहिँ पशुपतिं तथा।

हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम् ।। (बृहद् विवेक ३)

(१. आदि २. सनत्कुमार ३. बृहन्नारदीय ४. आदित्य ५. नन्दिकेश्वर ६. कौर्म ७. भागवत ८. वाशिष्ठ ६. भार्गव १० मुद्गल ११. कल्कि १२. देवी १३. महाभागवत १४. बृहद्धर्म १५. परानन्द १६. वह्नि १७. पशुपति १८. हरिवंश)

इनमें बहुत से औपपुराण उपपुराण की कोटि में स्वीकृत हैं, जो पहले वर्णित हैं। इन औपपुराणों में से जो लेख इस पुस्तक में प्रकाशित हैं उनके उल्लेख न करते हुए अन्य अवशिष्ट औपपुराणों के सामान्य परिचय प्रदत्त हैं।

वन्ही औपपुराण

यद्यपि इसका हस्तलेख कहीं भी उपलब्ध नहीं है, तथापि आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने पुराण विमर्श ग्रन्थ में लिखा है कि उक्त पुराण की पाण्डुलिपि डॉ. हाजरा जी के पास विद्यमान है। कुछ विद्वान् इसे प्राचीन अग्नि पुराण मानते हैं। हेमाद्रि ने चतुर्वर्ग चिन्तामणि में इस पुराण से अनेक पद्यों को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। इसके वर्ण्य विषय हैं–पाशुपत व्रत, वापी एवं कूपों के प्रतिष्ठाकाल निर्णय, ब्राह्मण लक्षण, जन्माष्टमी विधि निर्णय, विभिन्न दानों के फल निरूपण एवं वेद वेदाङ्ग के पाठ का फल।

संस्कृत का एक प्रसिद्ध श्लोक कुछ विकृत रूप में उक्त पुराण में उपलब्ध है–

नाप्यहं कामये राज्यं न स्वर्ग ना पुनर्भवम्।

प्राणिनां दुःखतप्तानां कामये दुःखनाशनम् ।।

चतुर्वर्ग चिन्तामणि के दानखण्ड से उद्धृत हेमाद्रि ने अग्नि पुराण एवं वन्ही पुराण से पृथक पृथक् श्लोकों का उद्धरण किया है। अतः वे दोनों पुराण पृथक पृथक् हैं। दशम शताब्दी से पहले ही इसकी रचना हो गई होगी।

हरिवंशपुराण औपपुराण

यह महाभारत का खिलभाग है। इसमें तीन पर्व हैं– हरिवंश पर्व, विष्णु पर्व, भविष्य पर्व। प्रत्येक पर्व की विषयवस्तु इस प्रकार वर्णित है–

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिल संज्ञितम्।

विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा।।

भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत्।।

एतत्पर्वशतं पूर्ण व्यासेनोक्तं महात्मना।।

इसकी कथा जनमेजय एवं वैशम्पायन के संवाद से प्रारम्भ होती है। सूत, शौनक एवं व्यास के संवादों से आगे विस्तार होता है। हरिवंश पर्व के प्रमुख विषय हैं– दक्षोत्पत्ति,

पृथुचरित, मरुतों की उत्पत्ति, ऐल उपाख्यान, धुन्धुवध, त्रिशंकु वर्णन, श्राद्ध वर्णन, हंस वर्णन, सोमचरित, देवासुर संग्राम, उर्वशी पुरुरवा उपाख्यान एवं विष्णु के विभिन्न अवतार आदि।

विष्णु पर्व में कृष्ण की बाललीला मुख्य रूप में वर्णित है जिसके अन्तर्गत शकट भंजन, यमलार्जुन प्रसंग, कुब्जा के प्रति अनुग्रह एवं कंसवध आदि वर्णित हैं। कृष्ण के परवर्ती चरित भी इस पर्व में वर्णित हैं।

१३.३.३ अन्य औपपुराण

१. कल्कि पुराण

२. महाभागवत पुराण

३. परानन्द पुराण

४. बृहद्धर्म पुराण

५. बृहन्नारदीय पुराण

६. मुद्‌गल पुराण

१३.४ अन्य प्रमुख पुराण

अन्य प्रमुख पुराणों में सर्वप्रथम नाम आता है आत्म पुराण का। आत्म पुराण में भी सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वंतर इन सभी लक्षणों का न्यून अधिक रूप में समावेश है, वृत्र आख्यान, नचिकेत उपाख्यान जैसे अनेक आख्यान उपाख्यान भी वर्णित है अतः इसे पुराण की श्रेणी में रखा जा सकता है। आत्म पुराण के रचना काल के विषय में कोई विवाद नहीं है। यह तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया है इसके रचयिता परमहंस परिव्राजक आचार्य आनंद आत्म पूज्य पाद के शिष्य भगवान शंकर आनंद है जैसा कि इसकी पुष्पिका से ही स्पष्ट हो जाता है– **इति श्रीमत् परमहंसपरिव्राजकाचार्य आनन्दात्मपूज्यपादशिष्येण श्रीशंकरानन्दभगवता विरचित उपनिषद्रत्न आत्मपुराण नाम ... अध्याय** से स्पष्ट है।

नीलमत पुराण

डॉ. भंडारकर ने इसकी एक पांडुलिपि के आधार पर इसे स्वतंत्र पुराण ना स्वीकार कर माहात्म्य माना है अथवा किसी पुराण विशेष का अंत माना है क्योंकि इसमें पुराण के समस्त लक्षण घटित नहीं होते हैं। नील मत पुराण भी पौराणिक शैली में ही लिखा गया है, जिसमें एक व्यक्ति की जिज्ञासा युक्त प्रश्नों का उत्तर दूसरा व्यक्ति पूर्व संवाद के माध्यम से देता है।

नीलमत पुराण स्वयं अपने में कुछ महत्व रखता है जैसे कपिलेश्वर माहात्म्य, आश्रम स्वामी माहात्म्य आदि। महत्वपूर्ण बात यह है कि कल्हण स्वयं इसे पुराण कहकर पुकारते हैं।

दत्तपुराण

जिस प्रकार कालांतर में महाकवि भास के नाटकों का एकाएक उजागर होकर दुनिया के सामने आना हुआ उसी प्रकार दत्त पुराण का भी पुरातन पड़ी हुई पांडुलिपियों से नाम उजागर हुआ। पुराण में धर्म की रक्षा एवं दुष्ट संहार के अतिरिक्त लोक शिक्षण भी अवतार लेने का प्रयोजन है, जिससे जगत का कल्याण होता है।

पुराण का विभाजन अष्टक नाम से किया गया है। इसमें कुल ८ अष्टक है एवं प्रत्येक अष्टक में ८–८ अध्याय हैं, जिनमें विविध विषयों पर विचार विमर्श किया गया है।

१३.५ सारांश

प्रस्तुत इकाई में पुराण तथा महापुराण के मध्य अंतर को पढा। जिससे ज्ञात होता है कि पुराण के ही किसी एक दो अंश का विस्तार से कहने पर महापुराण संज्ञा सिद्ध होती है। इसका परिणाम है कि महर्षि व्यास द्वारा पुराणों को महापुराण स्वरूप प्रदान किया गया महापुराण १८ हैं। इसके साथ ही विविध पुराणों का अध्ययन भी किया गया है, जिसके अन्तर्गत उपपुराण और उनकी संख्या, औपपुराण भी स्थापित किये गये हैं। इससे पृथक् अवशिष्ट पुराणों से सम्बन्धित कुछ अन्य पुराणों की भी चर्चा की है। पुराण हिंदू संस्कृति के वह सभ्यतम एवं प्राचीन ग्रंथ है जिनमें सृष्टि से लेकर प्रलय तक की समस्त घटनाएं कथा एवं आख्यानों के माध्यम से विशेष ज्ञान का स्रोत बना कर जन जन तक पहुंचाई गई है। पुराणों में वर्णित विषयों की कोई सीमा नहीं है, इनमें ब्रह्मांड विद्या, देवी देवताओं, राजाओं, ऋषि मुनियों की वंशावली, लोक कथाएं, तीर्थ यात्रा, चिकित्सा, खगोल शास्त्र, विज्ञान आदि अनेक विषयों पर विशद चर्चा एवं ज्ञान उपलब्ध होता है।

१३.६ अभ्यास

१. पुराण शब्द से आप क्या समझते हैं ?

२. महापुराण से क्या अभिप्राय है ?

३. पुराण तथा महापुराण में क्या अंतर है?

४. औपपुराणों की संख्या कितनी है ?

५. उपपुराणों को कितने वर्गों में विभाजित किया

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई १४ पुराणों की विषयवस्तु एवं विशेषताएं

१४.० उद्देश्य

१४.१ प्रस्तावना

१४.२ अष्टादश पुराणों की प्रतिपाद्य विषयवस्तु

१४.३ पुराणों की विशेषताएँ

१४.४ सारांश

१४.५ अभ्यास

१४.० उद्देश्य

१. पुराणों के बारे में सामान्य एवं विस्तृत रूप से जान सकेंगे।

२. पुराणों की विषयवस्तु को समझ सकेंगे।

३. पुराणों की विशेषताओं को जान सकेंगे।

४. पुराणों के रचना काल के बारे में जानेंगे।

५. पुराणों की संख्या तथा प्रतिपाद्य विषय को समझ सकेंगे।

६. पुराणों का भारतीय जनजाति पर प्रभाव क्या रहा यह जान पाएंगे।

१४.१ प्रस्तावना

इस इकाई में हम पुराणों के बारे में उनके नाम सहित तथा उनके अंदर वर्णित विषयवस्तु को संक्षेप एवं विस्तार के साथ पढ़ेंगे। इसके साथ ही पुराणों के अंदर भारतीय जनजाति को प्रभावित करने वाले कौन कौन से तत्व आते हैं, यह भी जानेंगे पुराणों के अंदर आने वाली धार्मिक, साहित्यिक, नैतिक, भौगोलिक आदि जानकारियों के बारे में भी हमें ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। इस इकाई के माध्यम से हम पुराणों का भारतीय जनजाति तथा वैश्विक स्तर पर क्या प्रभाव पड़ा यह भी जानेंगे। प्रारंभिक काल से ही पुराणों की रचना के बारे में तथा इनकी रचना काल के संबंध में अनेक भ्रांतियां रही हैं। उन सब का भी समाधान हम इस इकाई में जान सकेंगे।

पुराण एक विकासशील साहित्य है। वैदिक युग के अनन्तर ही पुराण विद्या का विकास हुआ तथा कालक्रम से इसमें विविध सामग्री जुड़ती गयी। व्यास ने आरम्भ में इस ज्ञान को अपने शिष्य लोमहर्षण को दिया। लोमहर्षण की शिष्य परम्परा में यह ज्ञान पल्लवित–पुष्पित होता गया सभी शिष्यों ने मूलगुरु व्यास के नाम पर ही पुराण सामग्री का संयोजन किया। सभी पुराण संशोधक व्यास के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। व्यास एक नाम नहीं रहकर कथावाचकों, संशोधकों और व्याख्याताओं का पर्यायवाची हो गया।

१४.२ अष्टादश पुराणों की प्रतिपाद्य–विषयवस्तु

पुराणों में जो इनका क्रम दिया गया है उसी के आधार पर यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय दिया है–

१) **ब्रह्मपुराण**

इसे आदिपुराण भी कहते हैं। प्राचीन माने गये सभी पुराणों में इसका उल्लेख है। मान्यता है कि व्यास ने इसे सर्वप्रथम लिखा था। कुछ पुराणों में (विष्णु, शिव, भागवत, नारद, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय तथा देवीभागवत में) इसकी श्लोक संख्या दस सहस्र कही गयी है, जबकि लिङ्ग, वराह, कूर्म, मत्स्य और पद्मपुराण के अनुसार इसमें तेरह सहस्र श्लोक हैं। बम्बई से प्रकाशित संस्करण में १३,७८७. श्लोक हैं। नैमिषारण्य में समागत ऋषियों को सूत लोमहर्षण ने इसका प्रवचन किया था। न्यूनाधिक रूप से अन्य पुराणों के समान इसमें जगत् की सृष्टि, मनु की उत्पत्ति, उनके वंश का वर्णन, देवों, देव योनियों तथा अन्य प्राणियों की उत्पत्ति, पृथ्वी का भूगोल, नरक तथा स्वर्ग का वर्णन है। इस पुराण के बड़े भाग में तीर्थों का माहात्म्य दिया गया है, विशेष रूप से उत्कल प्रदेश के पवित्र स्थलों और मन्दिरों का सूक्ष्म वर्णन है। इसका एक परिशिष्ट सौर उपपुराण है, जिसमें १२५० ई० के लगभग बने कोणार्क के सूर्यमन्दिर का भी उल्लेख है।

२) **पद्मपुराण**

यह विशाल पुराण ६४१ अध्यायों तथा ४८००० श्लोकों का है। मत्स्यपुराण के अनुसार इसमें ५५ सहस्र तथा ब्रह्मपुराण के अनुसार ५६ सहस्र श्लोक थे। यह पाँच खण्डों में विभक्त है– सृष्टिखण्ड, भूमिखण्ड, स्वर्गखण्ड, पातालखण्ड तथा उत्तरखण्ड नैमिषारण्य में इसका प्रवचन सूत उग्रश्रवा के द्वारा किया गया था। उग्रश्रवा लोमहर्षण के पुत्र थे। सृष्टिखण्ड में कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति और उनसे पूरे ब्रह्माण्ड की रचना का वर्णन है। इस खण्ड में पाँच पर्व हैं जिनमें क्रमशः सृष्टि वर्णन, सूर्य चन्द्रवंश–वर्णन, देवासुर संग्राम, तीर्थ माहात्म्य, राज वंशावली, रामायण कथा, तारकासुर वध इत्यादि निरूपित हैं। वाल्मीकि के आश्रम में ही व्यास द्वारा अष्टादश पुराणों की रचना का वर्णन है। उत्तरखण्ड सबसे बड़ा भाग है जिसमें विष्णुभक्ति पर बहुत बल दिया गया है। माघ और कार्तिक मासों का माहात्म्य भी यहाँ वर्णित है। राधा को लक्ष्मी कहा गया है। इस उत्तरखण्ड का परिशिष्ट 'क्रियायोगसार' है, जिसमें विष्णुभक्ति की समर्थक सामग्री का आधिक्य है तथा माधव और सुलोचना की मनोरम प्रेमकथा दी गयी है। इस पुराण में विष्णुभक्ति के अनेक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है, जैसे राधा, शालग्राम शिला और तुलसी का महत्त्व आदि।

३) **विष्णुपुराण**

अन्य पुराणों की अपेक्षा इस पुराण में मौलिक सामग्री अधिक विश्वसनीयतापूर्वक सुरक्षित है। **पुराणं पञ्चलक्षणम्** के प्राचीन स्वरूप की इसमें रक्षा की गयी है। रामानुज (१०१७–११३७ ई०) ने इसे प्रमाण–ग्रन्थ के रूप में उद्धृत किया है। इसमें विष्णु को परमदेवता के रूप में निरूपित किया गया है। यह पुराण छह खण्डों में विभक्त है, अध्यायों की संख्या १२६ है। यद्यपि पुराणों में इसकी श्लोक संख्या २३ या २४ सहस्र कही गयी है किन्तु इसके मुद्रित संस्करणों में प्रायः ६००० ही श्लोक मिलते हैं। इसके प्रवक्ता पराशर तथा श्रोता मैत्रेय कहे गये हैं। इसमें अवतारों के वर्णनों के द्वारा विष्णु की स्तुति है किन्तु विष्णुभक्तों के द्वारा किये गये व्रतों या उपवासों का, वैष्णव उत्सवों तथा मन्दिरों का कोई वर्णन नहीं है। इसके प्रथम भाग (अंश) में सृष्टि का वर्णन, देव राक्षस मनु आदि की उत्पत्ति और समुद्र मन्थन के विवरण के अनन्तर महान् विष्णुभक्त ध्रुव तथा प्रह्लाद के चरित वर्णित हैं। द्वितीय अंश में पृथ्वी, नरक, सूर्य तथा ग्रहों का वर्णन है। इस प्रसंग में भारतवर्ष का, राजा भरत का तथा विष्णु–भक्ति की दृष्टि से सर्वात्म दर्शन का भी विवरण है। तृतीय अंश में मनुओं तथा मन्वन्तरों, व्यास द्वारा वेदों के विभाजन,

वेदशाखाओं,वर्णाश्रमों, जन्म और विवाह संस्कारों के वर्णन के अनन्तर जैन बौद्ध आदि नास्तिकों के उद्‌भव की कथाएँ दी गयी हैं। चतुर्थ अंश में, वायु पुराण से मिलती जुलती सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं की सूची दी गयी है। इसमें उर्वशी, ययाति, राम तथा महाभारत की कथाएं भी हैं। अन्त में मगध, शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्‌ग आदि वंशों के राजाओं का वर्णन करके कलियुग के बर्बर राजाओं के अनीतिपूर्ण शासन का विनाश करने के लिए कल्कि–अवतार की भविष्यवाणी है। पञ्चम अंश में हरिवंशानुसार कृष्ण कथा तथा षष्ठ अंश में चारों युगों का वर्णन करके बन्धन मोक्ष का वैष्णव दर्शन के अनुसार विवेचन है।

इस पुराण पर डॉ० सर्वानन्द पाठक ने विष्णुपुराण कालीन भारत (चौखम्बा प्रकाशन) नामक उत्कृष्ट कार्य किया है। यह पुराण हिन्दी अनुवाद के साथ गीता प्रेस से प्रकाशित है।

४) **वायुपुराण**

इसमें विशेष रूप से शिव का वर्णन होने से बहुधा इसे 'शिवपुराण' से अभिन्न समझा जाता है, किन्तु शिवपुराण एक पृथक् ग्रन्थ है। वायुपुराण में ११२ अध्याय तथा प्रायः ग्यारह सहस्र श्लोक हैं। एक समय यह मगध क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय था। गया माहात्म्य नामक अंश तथा बाणभट्ट के द्वारा अपने ग्राम में इसके वाचन का निर्देश ऐसा संकेत देते हैं। डॉ० पार्जिटर ने इसका समर्थन किया है। यह चार भागों (पादों) में विभक्त है– प्रक्रियापाद (अध्याय १–६), उपोद्‌घातपाद (७–६४), अनुषङ्‌गपाद (६५–६६) तथा उपसंहारपाद (१००–११२)। इस पुराण में सृष्टिक्रम, भूगोल, खगोल, युगों, ऋषियों तथा तीर्थों का वर्णन एवं राजवंशों, ऋषिवंशों, वेद की शाखाओं, संगीतशास्त्र तथा शिवभक्ति का विस्तृत निरूपण है। शिव के ध्यान में लीन योगियों तथा शिवलोक की प्राप्ति पर पर्याप्त सामग्री दी गयी है। शिवभक्ति का आद्योपान्त विवेचन होने पर भी दो अध्याय वैष्णव मत के प्रतिपादक हैं जो प्रक्षिप्त लगते हैं। इसमें भी पुराण के पञ्चलक्षण मिलते हैं। पितरों और श्राद्ध का इसमें विस्तृत विवरण है (७१–८६)। कुछ सूचियों में 'शिवपुराण' को अष्टादश पुराणों में रखा गया है। वायुपुराण को ही शिवपुराण मानकर कई लोग इसका अर्थ कर लेते हैं किन्तु यह भ्रम है। शिवपुराण एक पृथक् ग्रन्थ है जिसे डॉ० पुसलकर ने एक निबन्ध में उपपुराण सिद्ध किया है। वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से मुद्रित शिवपुराण में सात खण्ड और २४००० श्लोक हैं। खण्डों को संहिता कहा गया है।

५) **भागवतपुराण**

पुराण साहित्य में सर्वाधिक प्रचलित कृति भागवतपुराण ही है। इसका पारायण विष्णुभक्तों के द्वारा किया जाता है, इस पर अनेक संस्कृत व्याख्याएं हुई हैं तथा अनेक भाषाओं में इसके रूपान्तर हैं। रामायण के समान इसका व्यापक प्रचार है। भक्तिरस का आधारग्रन्थ और धर्म का रसमय स्वरूप होने के कारण इसे अनुपम प्रसिद्धि प्राप्त है। अन्य पुराणों की अपेक्षा इसकी भाषा शैली अत्यधिक परिष्कृत, लालित्यपूर्ण, कवित्वमय एवं प्रौढ़ है। शिक्षित ब्राह्मणों के घर में वेद या अन्य पुराण भले ही न मिलें, भागवतपुराण अवश्य मिलेगा। विभिन्न अवसरों पर किसी फल के उद्देश्य से इस पुराण का सप्ताह वाचन पारायण होता है। इसे सभी दर्शनों का सार **(निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्)** तथा विद्वानों का परीक्षास्थल कहा गया है। **(विद्यावतां भागवते परीक्षा)**। यहाँ श्रीकृष्ण को ही ब्रह्मा, परमात्मा और भगवान् बताया गया है।

इस पुराण का विभाजन १२ स्कन्धों में हुआ है। पूरे ग्रन्थ में ३३५ अध्याय तथा अठारह सहस्र श्लोक हैं। प्रथम स्कन्ध में इस पुराण की उत्पत्ति की कथा विस्तृत रूप से दी गयी है कि परीक्षित् को शुकदेव जी ने इसे सुनायी थी। बाद में इसे नैमिषारण्य में सूत ने ऋषि मण्डली के समक्ष सुनाया। द्वितीय स्कन्ध में विराट् पुरुष, देवताओं की सकामोपासना, सृष्टिक्रम तथा भागवत के दस लक्षणों का वर्णन है। तृतीय स्कन्ध में उद्धव का विदुर को कृष्णलीलाओं का वर्णन सुनाना, मैत्रेय का विदुर को सृष्टिक्रम सुनाना, वराहावतार की कथा, हिरण्याक्ष वध, कपिल का जन्म और सांख्य दर्शन की उत्पत्ति आदि विषय हैं। चतुर्थ स्कन्ध में स्वयंभू मनु की कन्याओं की वंश परम्परा, दक्ष और शिव की कथायें ध्रुव, राजा वेन, राजा पृथु तथा पुरञ्जन के आख्यान एवं दस प्रचेताओं के वृत्त वर्णित हैं। पञ्चम स्कन्ध में गद्य का भी प्रयोग है, जिसमें प्रियव्रत आदि राजाओं के वृत्तान्त के अतिरिक्त भूगोल वर्णन है। षष्ठ स्कन्ध में अजामिल, दक्ष तथा उनकी सन्तति, विश्वरूप तथा वृत्रासुर का वध एवं दिति अदिति की कथाएँ मुख्य रूप से आयी हैं। सप्तम स्कन्ध में प्रहलाद की कथा दस अध्यायों में वर्णित है, शेष भाग में वर्णाश्रम धर्म का विवेचन है। अष्टम स्कन्ध में विभिन्न मन्वन्तरों की कथाएँ, गजेन्द्र मोक्ष, समुद्र मन्थन, बलि वामन कथा एवं मत्स्यावतार वर्णित हैं। नवम स्कन्ध में सूर्य तथा चन्द्र वंशों के राजाओं का वर्णन, भरतवंश वर्णन एवं पांचाल मगध आदि के राजाओं के वर्णन हैं। इस प्रसंग में हरिश्चन्द्र, राम, परशुराम, दुष्यन्त आदि की कथाएँ मुख्य हैं। दशम स्कन्ध इस पुराण का बृहत्तम भाग (६० अध्याय) है। सर्वाधिक लोकप्रिय भी यही भाग है। इसमें कृष्णजन्म से लेकर उनकी पूरी जीवन कथा, लीलाओं का वर्णन है। एकादश स्कन्ध में यादवों के विनाश का तथा कृष्ण उद्धव संवाद के अन्तर्गत अनेक धार्मिक, दार्शनिक विषयों का वर्णन है। अन्त में कृष्ण का स्वलीलासंवरण (मृत्यु) वर्णित है। द्वादश स्कन्ध में कलियुग के राजाओं तथा इस युग के धर्म का वर्णन करके वेदों और पुराणों का विभाजन, भागवत पुराण की विषय वस्तु तथा अन्य पुराणों के श्लोकों की संख्या निर्दिष्ट है।

कुछ विद्वान् भागवत से देवीभागवत पुराण का ग्रहण करते हैं **(भगवत्या इदं भागवतम्।)** इसमें देवी या शक्ति की महिमा वर्णित है। इसमें भी बारह स्कन्ध तथा १८ सहस्र श्लोक हैं। अध्यायों की संख्या केवल ३१८ है। भागवत जहाँ दर्शनपरक है, वहाँ देवीभागवत तन्त्रानुसारी है। भागवत का रचनाकाल जहाँ छठी शताब्दी ई० से १० वीं शताब्दी ई० तक माना गया है, वहाँ देवीभागवत के वर्तमान रूप को ६ वीं से ११ वीं शताब्दी ई० तक बताया जाता है। कहा गया है कि प्रथम शताब्दी ई० से ही तन्त्र का व्यापक प्रचार होने लगा था, राधा की पूजा इसी का परिणाम थी। भागवत में तो राधा की चर्चा नहीं है किन्तु इस देवीभागवत की देवियों में वे अन्यतम हैं। इसमें मङ्गला देवी, षष्ठी देवी तथा मनसा देवी की कथाएँ मुख्य रूप से वर्णित हैं। इसके मूल रूप में परिवर्तन बंगाल में किया गया था।

६) नारद (बृहन्नारदीय) पुराण

यह 'नारद' उपपुराण से भिन्न महापुराण है। पुराण के लक्षण इसमें नहीं हैं— वैष्णव धर्म के उत्सवों और व्रतों का इसमें व्यापक विवरण है। इसके दो खण्ड हैं, पूर्व (१२५ अध्याय) तथा उत्तर (८२ अध्याय)। इसमें प्रायः १८ सहस्र श्लोक हैं।

१. इस स्कन्ध में कृष्ण की रासलीला का लम्बा वर्णन है किन्तु राधा का उल्लेख नहीं है।

२. इसका संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद कल्याण के विशेषांक के रूप में गीता प्रेस से प्रकाशित है।

३. नारद पुराण संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद के रूप में कल्याण के विशेषांक में प्रकाशित है।

७) **मार्कण्डेय पुराण**

यह प्राचीनतम पुराणों में अन्यतम है क्योंकि इसके कुछ भागों में न विष्णु का महत्त्व वर्णन है, न शिव का। इसमें इन्द्र, अग्नि, सूर्य आदि वैदिक देवताओं की महत्ता दिखाई गई है। पार्जिटर का कथन है कि इसके प्राचीनतम भाग तीसरी शताब्दी ई. या उससे भी पूर्व के हैं। इन अंशों में मार्कण्डेय ऋषि अपने शिष्य क्रौष्टिकि को पुराण के लक्षणों में स्थापित विषयों (सृष्टि, मन्वन्तर, वंशावली आदि) का उपदेश देते हैं। इस पुराण में १३८ अध्याय तथा प्रायः सात सहस्र श्लोक मिलते हैं। इसका आरम्भ महाभारत की कथा के विषय में चार प्रश्नों से होता है जैसे द्रौपदी पाँच पाण्डवों की पत्नी क्यों बनी, उसके पुत्र युवावस्था में क्यों मरे इत्यादि। इनका उत्तर आख्यानों के द्वारा जैमिनि को चार ज्ञानी पक्षियों ने दिया। महाभारत के समान यहाँ भी आख्यानों के अतिरिक्त गृहस्थधर्म, श्राद्ध, दिनचर्या, नित्यकर्म, व्रत, उत्सव आदि के विषय में शुद्ध उपदेशात्मक अंश हैं (अध्याय २६–३५)। योग के विषय में भी एक प्रकरण है (अध्याय ३६–४३)। आख्यानों में अनुसूया नामक पतिव्रता की कथा है जिसने अपने पति को ऋषि के शाप से बचाने के लिए सूर्योदय होना ही रोक दिया था। इस पुराण में दुर्गा माहात्म्य (सप्तशती) के रूप में एक स्वतन्त्र प्रकरण है (अध्याय ८१–९३) जिसे बाद में जोड़ा गया माना जाता है। यह बहुत लोकप्रिय धार्मिक पुस्तक है, जिसका पाठ शक्तिपीठों में तथा गृहस्थों के घरों में भी होता है।

८) **अग्निपुराण**

अग्नि के द्वारा वसिष्ठ को उपदेश इसमें दिये जाने के कारण इसे अग्निपुराण कहा गया है। यह भारतीय संस्कृति तथा विद्याओं का महाकोष है जिसमें भारतीय वाङ्मय के उत्कृष्ट ग्रन्थों और विषयों का रोचक सार संकलन है। पुराणों में दिये गये विवरणों के अनुसार तो इसमें पन्द्रह सहस्र चार सौ श्लोक थे किन्तु वर्तमान अग्निपुराण में ३८३ अध्याय तथा प्रायः साढ़े ग्यारह सहस्र श्लोक हैं। इसमें विष्णु के अवतारों का वर्णन है। राम और कृष्ण के वर्णन में यह रामायण, महाभारत तथा हरिवंश का अनुसरण करता है। प्रारम्भ में वैष्णव ग्रन्थ का स्वरूप लेने पर भी यह प्रधानतः शैव धर्म का ग्रन्थ है, जिसमें शिवलिङ्ग, दुर्गा, गणेश, सूर्य आदि की रहस्यात्मक पूजा पद्धतियों का वर्णन है। देव प्रतिमाओं के निर्माण और उनकी प्राण प्रतिष्ठा की विधियाँ भी यहाँ वर्णित हैं। पुराणों के लक्षण विषयों के अतिरिक्त इसमें भूगोल, गणित और फलित ज्योतिष, विवाह और मृत्यु की धार्मिक क्रियाएँ, शकुनविद्या, वास्तुविद्या, दिनचर्या, नीतिशास्त्र, युद्धविद्या, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, छन्द, काव्य, व्याकरण, कोषेनिर्माण आदि नाना विषयों पर प्रकाश डाला गया है। विश्वकोषात्मकता इस पुराण की विशिष्टता है।

९) **भविष्य पुराण**

इसके नाम से ही प्रकट है कि यह भविष्य की घटनाओं से सम्बद्ध पुराण है। इसका प्रति संस्करण अनेक बार होता रहा है। ऑफ्रेख्ट ने १९०३ ई० में एक लेख के द्वारा इस पुराण को 'साहित्यिक प्रपञ्चश की संज्ञा दी थी। वेंकटेश्वर प्रेस (बम्बई) से प्रकाशित भविष्य पुराण में अनेक नये तथ्यों का समावेश है। फिर भी आपस्तम्ब धर्मसूत्र के तृतीयाध्याय में इसके प्राचीन रूप की चर्चा होने से इसे प्राचीन माना जा सकता है, सामग्री का परिव्रहण चाहे जितना होता रहा हो। स्त्रियों की स्थिति तथा वर्ण व्यवस्था पर इस पुराण में नया प्रकाश दिया गया है।

इसके मुख्य भागों का रचनाकाल (अंग्रेजी शासनकाल के विवरण वाले प्रक्षिप्तांशों को छोड़कर) ५०० ई० से १२०० ई० के बीच दिखाया गया है। यद्यपि इसका उद्भव अन्य पुराणों के समान ई० पू० में ही हो चुका था। प्रक्षिप्तांश मुख्यतः प्रतिसर्ग पर्व में हैं।

१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण

यह वैष्णव पुराण है, जिसमें श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन करते हुए वैष्णव धर्म का विवरण दिया गया है। राधा कृष्ण की लीला का सरस वर्णन होने से यह पुराण कृष्णमूलक वैष्णव सम्प्रदायों का उपजीव्य है। राधा को यहाँ सृष्टि की आधारभूत शक्ति और कृष्ण को बीज कहा गया है **(सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः)।** पुराणों के अनुसार इसकी श्लोक संख्या १८ सहस्र है। इसके चार खण्ड हैं– ब्रह्म, प्रकृति, गणेश तथा श्रीकृष्ण जन्म। ब्रह्मखण्ड में सृष्टि वर्णन है व श्रीकृष्ण ने ही परमात्मा के रूप में सृष्टि रचना की है। प्रकृति खण्ड में मूल प्रकृति का वर्णन है। कृष्ण की आज्ञा से प्रकृति पाँच देवियों के रूप में बदल जाती है– दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा। इस खण्ड में इन देवियों से सम्बद्ध अनेक कथाएँ तथा उनकी पूजा विधियाँ वर्णित हैं। गणेश खण्ड में गणेश को कृष्ण का अवतार बताकर उनका विवरण है। श्रीकृष्णजन्मखण्ड सबसे बड़ा है। कृष्ण लीलाओं, उनके युद्धों तथा गोपियों के प्रति उनके अनुराग का इसमें विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रसंगवश इसमें भक्ति, सदाचार, योग, नारी धर्म, अतिथि सेवा, माता पिता की महिमा, आयुर्वेद, भक्ष्याभक्ष्य नियम, शकुन विद्या तथा पाप पुण्य का भी विवेचन है। अनेक माहात्म्य भी इसमें संकलित है।

११) लिङ्गपुराण

इसमें शिवोपासना के विविध रूपों तथा शिवलिङ्ग की पूजा का विशेष रूप में विवरण दिया गया है। यहाँ शिव से ही सृष्टि रचना का वर्णन है। विष्णु के अवतारों के समान इस पुराण में शिव के अठाइस अवतारों की कथाएँ दी गयी हैं। लिङ्ग की पूजा से चतुर्वर्ग की प्राप्ति इसमें बतायी गई है। इस पुराण में ११ सहस्र श्लोक तथा १६३ अध्याय हैं। इसे पूर्व और उत्तर दो भागों में विभक्त किया गया है। पूर्वभाग में शिव द्वारा सृष्टि का तथा वैवस्वत मन्वन्तर से कृष्ण के काल तक के राजवंशों का वर्णन है। कई स्थलों पर शिव को विष्णु से बड़ा बताया गया है। उत्तर भाग में शैवतन्त्रों के अनुसार पशु, पाश और पति का वर्णन है। इस भाग में कई अध्याय गद्यात्मक हैं। इसमें काशी तथा समीपवर्ती क्षेत्रों का विवरण है (अध्याय ६२)। योग का वर्णन इसमें व्यास भाष्य (छठी शताब्दी ई.) के आधार पर है। इसका काल आठवीं–नवीं शताब्दी माना गया है

१२) वराहपुराण

इसमें विष्णु के वराह अवतार का वर्णन है। पाताल लोक से पृथ्वी का उद्धार करके वराह ने इस पुराण का प्रवचन किया था। यह वैष्णव पुराण है तथापि इसमें शिव, दुर्गा तथा गणेश की कथाएँ दी गयी हैं। पुराणों के अनुसार इसमें २४ सहस्र श्लोक हैं किन्तु वर्तमान संस्करणों में केवल ग्यारह सहस्र के आसपास श्लोक मिलते हैं जो २१७ अध्यायों में विभक्त हैं। इसमें सृष्टि, वंशावली आदि की संक्षिप्त चर्चा है किन्तु मुख्य रूप से विष्णु भक्तों के लिए संकलित स्तोत्रों तथा पूजाविधियों का यह संग्रह–ग्रन्थ है।

१३) स्कन्दपुराण

भगवान् शिव के पुत्र स्कन्द (कार्तिकेय, सुब्रह्मण्य) के नाम पर आश्रित यह पुराण सबसे बड़ा है। इसमें इक्यासी सहस्र श्लोक हैं। इसका विभाजन दो प्रकार से (संहिताओं में और खण्डों में) मिलता है। संहिताओं की संख्या छह है– सनत्कुमार, सूत, शंकर, वैष्णव, ब्राह्म तथा सौर। इनमें सूतसंहिता महत्त्वपूर्ण है, इसमें छह सहस्र श्लोक हैं। शिवपूजा की वैदिक तथा तान्त्रिक दोनों विधियों का इसमें विवरण है। इस संहिता पर माधवाचार्य ने तात्पर्य दीपिका नामक विस्तृत टीका लिखी है (आनन्दाश्रम ग्रन्थावली में प्रकाशित)। यह संहिता स्वयं चार खण्डों में विभक्त है जिनमें शिवमहिमा, हठयोग, मुक्ति, अद्वैत वेदान्त से शिव का समन्वय आदि वर्णित हैं। यह पुराण साहित्य में विलक्षण ग्रन्थ माना जाता है।

१४) वामनपुराण

इसमें विष्णु के वामनावतार के वर्णन से ग्रन्थारम्भ होता है तथा कई अध्यायों में (२४–३२) विष्णु के आवतारों का सामान्य वर्णन है। किन्तु इसका एक बड़ा भाग शिवलिङ्ग की पूजा, गणेश कार्तिकेय के आख्यान तथा शिवपार्वती के विवाह से सम्बद्ध है। सृष्टि आदि पाँच पौराणिक विषयों में शायद ही किसी का वर्णन इसमें है। अतएव यह पुराण अपने मूल रूप में नहीं मिलता है। मत्स्यपुराण (५३.५४ तथा आगे) में इस पुराण के विषय तथा विस्तार पर जो सूचनाएं हैं वे भी इसमें नहीं मिलती हैं। इसमें ९५ अध्याय तथा दस सहस्र श्लोक हैं। इसका विभाजन चार संहिताओं में हुआ है– माहेश्वरी, भागवती, सौरी तथा गाणेश्वरी। वैष्णव पुराण होने पर भी इसमें उदारता है। डॉ. हाजरा के अनुसार– इसे अन्तिम रूप ९ वीं१० वीं शताब्दी ई० में मिला था क्योंकि कर्म विपाक, वर्णाश्रम धर्म, व्रत, विष्णुपूजा आदि प्रकरण इसी काल में जोड़े गये थे।

१५) कूर्मपुराण

विष्णु के कूर्म अवतार का इसमें वर्णन है। विष्णु ने इस अवतार में समुद्र मन्थन में मुख्य भूमिका ग्रहण की थी। इसमें कहा गया है कि इस पुराण की चार संहिताएँ हैं– ब्राह्मी, भागवती, सौरी और वैष्णवी। किन्तु कूर्मपुराण के नाम से अभी केवल प्रथम (ब्राह्मी) संहिता ही मिलती है, जिसमें छह सहस्र श्लोक हैं। नारदपुराण के अनुसार इसमें १७ सहस्र श्लोक थे। वर्तमान ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ५१ और ४४ अध्याय हैं। इसके आरम्भ में राजा इन्द्रद्युम्न की कथा है जो अगले जन्म में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। उसे कूर्मरूप में विष्णु ने इस पुराण का उपदेश दिया। शिव और विष्णु की अभिन्नता पर इस पुराण में बहुत बल दिया गया है। शिव की शक्ति (देवी) की आठ सहस्र नामों से यहाँ स्तुति की गयी है (१.११–१२)। इस पुराण में पञ्चलक्षण भी मिलते हैं। इसके उत्तरभाग में काशी और प्रयाग का माहात्म्य दिखाया गया है। ईश्वरगीता तथा व्यासगीता के नाम से स्वतन्त्र ग्रन्थ भी इसमें सम्मिलित हैं। डॉ. हाजरा के अनुसार कूर्मपुराण पाञ्चरात्र मत का प्रतिपादक प्रथम पुराण है। इसका रचना काल षष्ठ शतक ई. है किन्तु कुछ भाग ९वीं–१०वीं शताब्दी में भी जोड़े गये।

१६) मत्स्यपुराण

प्राचीनता तथा वर्ण्यविषय के विस्तार की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण पुराण है। पञ्चलक्षण की संगति होने से इसे प्राचीन माना गया है। पुराणों में यद्यपि इसकी श्लोक संख्या उन्नीस सहस्र कही गयी है किन्तु इसके वर्तमान संस्करणों में २९१ अध्याय तथा १४००० श्लोक मिलते हैं। इसमें जलप्रलय का वर्णन है जिससे सभी प्राणियों की रक्षा मत्स्य रूपधारी विष्णु ने की थी। यह वर्णन आरम्भ के कुछ

अध्यायों में है। मत्स्य और मनु के संवाद के रूप में पुराण का प्रकाशन हुआ है। इसमें पितरों, तीर्थयात्रा, भुवनकोश, दान माहात्म्य, राजधर्म, श्राद्ध तथा गोत्र–प्रवरों का विस्तृत वर्णन है। इसके बहुत बड़े अंश में (अध्याय २१५–२७) राजधर्म का वर्णन है जो राजशास्त्र के अपेक्षित विषयों के विवेचन से सम्पन्न है। व्रत (५४–१०२), प्रयाग–माहात्म्य (१०३–१२), काशी माहात्म्य (१८०–५), नर्मदा माहात्म्य (१८६–६४), शकुन विचार (२२८–३८), देवप्रतिमा और मन्दिर निर्माण (२५८–७०), दान (२७४–८६) आदि पर लम्बे प्रकरण हैं। धार्मिक विषयों की दृष्टि से इसे शैव या वैष्णव दोनों कहा जा सकता है। इसमें कलियुग के राजाओं की सूची दी गयी है। स्मिथ का कथन है कि आन्ध्र नरेशों की जो सूची इस पुराण में दी गयी है, वह बहुत विश्वसनीय है। डॉ० हाजरा ने इसका रचनाकाल तीसरी शताब्दी ई० के उत्तरार्ध या चौथी शताब्दी के पूर्वार्ध में माना है। पी. वी. काणे इसकी उत्तरकालीनसीमा छठी शताब्दी ई. तक मानते हैं। इस पुराण का एक उत्कृष्ट संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ गीता प्रेस से दो खण्डों में प्रकाशित है जो मूलतः 'कल्याण' के अङ्कों में प्रकाशित हुआ था।

१७) गरुडपुराण

यह एक वैष्णव पुराण है। इस पुराण को स्वयं विष्णु ने गरुड़ के समक्ष सुनाया था, गरुड़ ने कश्यप के समक्ष इसका प्रवचन किया। पुराण के पाँच लक्षणों में कुछ का समावेश इसमें है जैसे सृष्टि, मन्वन्तर, सूर्य चन्द्र वंशावली। किन्तु इसका विपुलांश विष्णु पूजा, वैष्णव व्रत, प्रायश्चित तथा तीर्थ माहात्म्य को ही समर्पित है। शक्ति पूजा तथा पञ्चदेवों (विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश) की उपासना की विधि भी इसमें वर्णित है। गरुड़ पुराण पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड में विभक्त है जिनमें क्रमशः २२६ तथा ३५ अध्याय हैं। इसकी श्लोक संख्या १८ सहस्र श्लोक हैं।

१८) ब्रह्माण्डपुराण

नारदपुराण तथा मत्स्य पुराण में इसकी विषयसूची दी गयी है, जिससे ज्ञात होता है कि इसमें १०६ अध्याय तथा १२ सहस्र श्लोक हैं। मत्स्यपुराण (अध्याय ५३) के अनुसार ब्रह्माण्ड के महत्व का वर्णन करने के लिए ब्रह्मा ने जिस पुराण का उपदेश दिया और जिसमें भविष्य एवं कल्पों का वृत्तान्त विस्तार से दिया गया वह 'ब्रह्माण्डपुराण' है। नारदपुराण के अनुसार– इसमें चार पाद (खण्ड) थे– प्रक्रिया, अनुषङ्ग, उपोद्घात तथा उपसंहार। किन्तु वेंकटेश्वर प्रेस (बम्बई) से प्रकाशित संस्करण में केवल प्रक्रिया तथा उपोद्घात पाद ही हैं। इस पुराण में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (जगत) का सांगोपांग विवरण है। इसके अन्तर्गत विश्व का पौराणिक भूगोल एवं खगोल वर्णन भी है। उपोद्घात पाद में क्षत्रियों के वंशों का वर्णन भी है जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है। इस पुराण का उपदेश वायु ने व्यास को दिया था। 'अध्यात्मरामायण' को ब्रह्माण्डपुराण का अंश माना जाता है किन्तु किसी प्रतिलिपि में यह उपलब्ध नहीं है, अपितु एक पृथक् ग्रन्थ ही है। इस पुराण में नचिकेता की कथा को विकृत रूप देकर 'नासिकेतोपाख्यान' प्रस्तुत किया गया है। इसे भी पुराण से पृथक् ग्रन्थ मानना चाहिए। ब्रह्माण्डपुराण की रचना ४०० ई० तथा ६०० ई० के बीच हो गयी थी।

१४.३ पुराणों की विशेषताएं–

पुराणों का प्रभाव आज भी भारतीय जन मानस में देखने को मिलता है। औपचारिक शिक्षा से क्षचित जनता में पारम्परिक ज्ञान का वितरण पुराणों की ही देन है, उसे

नैतिक दृष्टि से आदर्शोन्मुख बनाकर भारतीय राष्ट्र के लिए समर्पण भावना में निरत बनाया है तथा आस्तिकवाद की व्यवस्था में रखकर सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँध रखा है। पुराणों का धार्मिक, ऐतिहासिक, शैक्षणिक, नैतिक आदि दृष्टियों से इतना महत्त्व है जितना किसी साहित्य का नहीं हो सकता। यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार किया जाता है–

१) **धार्मिक महत्त्व**

पुराणों की सर्वोपरि महत्ता आस्तिकवाद के समर्थन के कारण है। उनमें अनेक देवताओं का वर्णन है। सभी देवताओं की समानता की घोषणा करने पर भी एक देवता की महत्ता दिखाना सभी पुराणों का लक्ष्य रहा है। विशेष रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश तथा सूर्य की उपासना पद्धतियों का प्रामाणिक बोध पुराणों से होता है। इन्हीं के आधार पर परवर्ती कर्मकाण्ड–ग्रन्थों का विकास हुआ है। विन्टरनित्स का कथन है कि धर्म के इतिहास की दृष्टि से वे अमूल्य है और केवल इसी दृष्टि से उनका अध्ययन होना चाहिए जो आज तक नहीं हो सका है। सनातन–धर्म पुराणों को वेदों से बढ़कर महत्त्व देता है। नारदपुराण में (उत्तर. २४.१७) इन्हें वेदों से अधिक प्रामाणिक कहा गया है क्योंकि वेद अपने प्रचार और व्याख्या के लिए पुराणों पर आश्रित हैं–

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।।

२) **ऐतिहासिक महत्त्व**

पुराणों में महाभारत–युद्ध के पूर्व के राजाओं की वंशावली तो श्रुति–परम्परा के आधार पर दी ही गयी है, इसके बाद के राजाओं में परीक्षित् से लेकर पद्मानंद का इतिहास भी ज्ञात अभिलेखों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यह कालखण्ड भारतीय इतिहास के लिए अभी तक अज्ञात ही है। तथाकथित ऐतिहासिक काल के भी कुछ राजवंशों का विवरण (भविष्यवाणी के रूप में) पुराणों में प्रस्तुत है। मौर्य–वंश के लिए विष्णुपुराण, आन्ध्रवंश के लिए मत्स्यपुराण तथा गुप्त–वंश के लिए वायुपुराण अत्यधिक प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं।

३) **शैक्षणिक महत्त्व**

भारतवर्ष की जनता प्राचीन काल में अधिकांशतः औपचारिक शिक्षा से वञ्चित रहती थी। वेदों की शिक्षा तो अत्यधिक सीमित थी। फिर भी हमारे देश की जनता को सर्वथा मूर्ख, अविवेकी या असंस्कारी नहीं कहा जा सकता क्योंकि पुराणों के उपदेश उन्हें सुलभ थे। पुराणों की कथाओं का आयोजन मुख्य मुख्य क्षेत्रों में होता था जिन्हें सारी जनता भेदभाव छोड़कर सुनती थी। इन कथाओं में अनौपचारिक शिक्षण की व्यवस्था थी। यही कारण है कि कतिपय पुराणों में नीति, दर्शन, धर्मशास्त्र, काव्यशास्त्र, वास्तुविद्या, आयुर्वेद, व्याकरण, ज्योतिष, शरीर विज्ञान आदि शास्त्रीय और वैज्ञानिक विषयों का प्रतिपादन किया गया। परिणामतः अक्षर ज्ञान से रहित जनता भी पुराणों के माध्यम से, केवल श्रवण द्वारा, शिक्षा संस्कार पाती थी। कथा कहानियों के द्वारा उसे अपने जीवन को आदर्शमय बनाने का सुन्दर अवसर मिलता था। आज के सभी शिक्षा–साधनों से भी वह परिणाम नहीं निकल रहा है जो पुराणों की साधारण कथा उत्पन्न करती थी।

४) **नैतिक महत्त्व**

पुराणों ने मनुष्य की क्रियाओं को धार्मिक रूप प्रदान करके उन्हें पुण्य के रूप में विभाजित किया था। यद्यपि वैदिक युग से ही यह कार्यक्रम आरम्भ हो गया था

तथा धर्मसूत्रों में इसकी व्यापक व्यवस्था मिलती है किन्तु इस व्यवस्था में विश्वास उत्पन्न करने का कार्य पुराणों ने ही किया था। इसके लिए अनेक रोचक आख्यान बने जिनमें पापकर्म के लिए दण्ड और पुण्यकर्म के लिए पुरस्कार के विवरण दिये गये। इसी प्रसङ्ग में स्वर्ग और नरक का विस्तृत वर्णन कई पुराणों में किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता, आज की जड़वादी संस्कृति के आगमन के पूर्व तक, पुराण श्रवण के कारण आदर्श जीवन यापन करती थी, जिसकी प्रशंसा चीनी तथा पश्चिमी यात्रियों ने मुक्तकण्ठ से की है। नरक की यातना के भय से अनैतिक तथा पापकर्मों से दूर रहना एवं स्वर्गादि फलों से आकृष्ट होकर व्रत उपवास, दया दान आदि कर्मों में रुचि होना सामान्य भारतीय का जीवन–दर्शन था

५) भौगोलिक महत्त्व

अनेक पुराणों में भुवनकोश प्रकरण देकर समस्त भूमण्डल का यथासाध्य ज्ञान देने का प्रयास किया गया है। विदेशों के वर्णन में भले ही कल्पना या गतानुगतिक सूचनाओं का आश्रय लिया गया हो किन्तु भारत के भूगोल का निरूपण करने में पौराणिक सूचनाएँ प्रायः प्रामाणिक हैं। इनमें न केवल भारत के विभिन्न भूभागों का अपितु उसकी नदियों, पर्वतों, झीलों, वनों, मरुस्थलों, नगरों, प्रदेशों एवं जातियों का भी अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ विवरण प्रस्तुत है।

६) राष्ट्रीय एकता का निरूपण

पुराणों में सम्पूर्ण भारत की एकता का सफल प्रयास किया गया है। विष्णु पुराण, भागवत पुराण आदि में भारतवर्ष की महिमा का गान किया गया है जहाँ जन्म लेने के लिए देवता भी उत्सुक रहते हैं–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।। (विष्णुपुराण २.३.२४)

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।

यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः।। (भागवतपुराण ५.१६.२१)

इस प्रकार भारत में जन्म लेने का महत्त्व दिखाकर पुराणों ने राष्ट्रीय गौरव तथा अस्मिता का निरूपण किया है। सभी प्रदेशों में रहने वाले भारतीयों को एक सांस्कृतिक सूत्र में पुराणों ने युगों से बाँध रखा है।

७) सामाजिक महत्त्व

पुराणों में भारतीय समाज की व्यवस्था का न केवल चित्रण है, अपितु आदर्श समाज बनाने की व्यापक विधियाँ वर्णित हैं। वर्णाश्रम के गुण कर्म, विविध संस्कार, पारिवारिक सम्बन्ध, राजधर्म, स्त्रीधर्म, गुरु–शिष्य के बीच सम्बन्ध इत्यादि के विवरण हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि पूरे समाज के लिए पुराण आचार संहिता प्रदान करते हैं।

८) दार्शनिक महत्त्व

कुछ पुराणों में अद्भुत दार्शनिक सामग्री मिलती है। सृष्टि के क्रम का रोचक वर्णन करते हुए प्रायः सभी पुराण जगत् की उत्पत्ति का दार्शनिक विवेचन करते हैं। सामान्य रूप से सांख्य दर्शन के सृष्टिक्रम को मूल सृष्टि की व्याख्या करने के लिए स्वीकार किया गया है किन्तु यत्र तत्र वेदान्त के मायावाद, सर्वेश्वरवाद इत्यादि की भी युगपत् चर्चा है।

६) साहित्यिक महत्त्व

पुराणों में यद्यपि सरल, परिमार्जित तथा स्वाभाविक संस्कृत भाषा का प्रयोग है जो अनेक युगों की जन प्रचलित वाग्धाराओं का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु कुछ पुराणों में काव्यमयी अभिव्यक्ति मिलती है। गद्य पद्य दोनों का मिश्रित रूप साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भागवत पुराण के साहित्यिक सौन्दर्य के अनुशीलन का प्रयास इधर के कुछ ग्रन्थों में हुआ है जिससे पुराणों के साहित्यिक मूल्य पर प्रकाश पड़ता है।

१४.४ सारांश

पुराण साहित्य भारतवर्ष की ऐसी सम्पत्ति है जिसका मूल्याङ्कन करना आज विद्वानों के लिए अत्यंत ही उपादेय है। पुराण एक विकासशील साहित्य है वैदिक युग के अनंतर ही पुराण विद्या का विकास हुआ तथा कालक्रम से इसमें विविध सामग्री जुड़ती गई। व्यास जी ने आरंभ में इस ज्ञान को अपने शिष्य लोमहर्षण को दिया। लोमहर्षण की शिष्य परंपरा में यह ज्ञान पल्लवित पुष्पित होता गया तथा सभी शिष्यों ने मूल गुरु व्यास के नाम पर ही पुराण सामग्री का संयोजन किया।

प्रस्तुत इकाई में हमने सभी पुराणों की विषय वस्तु पर प्रकाश डाला है। इनमें मुख्यतः ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, अग्नि पुराण आदि आते हैं। इन्हीं पुराणों में अनेक कथा, आख्यान, तीर्थ माहात्म्य, भूगोल, खगोल शास्त्र, विज्ञान आदि को विषय बना कर भारत के सांस्कृतिक, भौगोलिक आदि विषयों पर विशेष रूप से प्रकाश एवं प्रभाव डाला है। प्रत्येक पुराणों में भिन्न भिन्न अध्याय एवं विषय वस्तु के होने से पाठकों को इनमें रुचि बनी रहती है तथा विपुल ज्ञान का अनुभव भी होता है। यह पुराण न केवल ज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है अपितु व्यवहारिक दृष्टि से भी लोक कल्याण की भावना होने से प्रत्येक मनुष्य के लिए हितकर एवं लाभप्रद हैं। जहां भागवत पुराण हमें भक्ति से जोड़ता है वही अग्नि पुराण काव्य महाकाव्य के बारे में एवं विज्ञान के बारे में बताता है जहां मार्कंडेय पुराण उपनिषदों की बात करता है, वहीं स्कंद पुराण कथाओं के माध्यम से जीवन जीने के तरीकों को सरलता से समझाता भी है। एकमेव गरुड़ पुराण एवं मत्स्य पुराण का भी अपना–अपना महत्व रखते है। सभी पुराण हमें धर्म से जोड़ते हैं व इतिहास की जानकारी प्रदान करते हैं और यही प्रभाव है कि इनके रहते हुए भारतीय जनजाति शिक्षा से वंचित रहते हुए भी अनेक प्रकार के ज्ञान को अपने अंदर समेटे हुए हैं। इन्हीं के ज्ञान का प्रभाव है कि भारतीय जनजाति अपने नैतिक मूल्यों को अब तक अपनी धरोहर के रूप में स्वीकार कर रही है।

पुराणों ने हमें सिर्फ ज्ञान देकर ही नहीं अपितु राष्ट्रीय एकता का निरूपण करके हमेशा एकजुट रहकर कार्य करने का ज्ञान भी दिया है। इन्होंने हमें समाज में किस प्रकार रहा जाए इस बारे में भी अनेक सारभूत तथ्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं पुराणों का उपकार भारतीय जनजाति अनेक वर्षों में भी नहीं भूल पायेगी।

१४.५ अभ्यास

१. पुराणों के महत्व पर अपने विचार लिखिए।

२. पुराणों का साहित्यिक महत्व क्या है?

३. पुराणों का भारतीय जनजाति पर क्या प्रभाव पड़ा?

४. अग्नि पुराण का क्या महत्व है?

५. पुराणों के पांच लक्षणों पर चर्चा कीजिए।

इकाई 15 पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व

इकाई की रुप रेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्नोत्तर

15.7 बहुविकल्पीय प्रश्न

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.9 उपयोगी पुस्तकें

15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पुराण साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह पहली इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि पुराण की आवश्यकता किस प्रकार से हुई? 'पुराणों को' धर्म का अङ्ग माना गया है। पुराणों का मानकर प्राचीन कथाओं, वंशावलियों, इतिहास–भूगोल के तथ्यों एवं सामान्यतः ज्ञान के सभी विषयों को पुराणों में काल–क्रम से समाविष्ट कर दिया गया। जिस प्रकार महाभारत की प्रसिद्धि प्राचीन काल से चली आ रही है उसी प्रकार 'पुराण' की प्रसिद्धि भी चली आ रही है जिसकी अन्तिम रचना भगवान् व्यास जी ने ही की थी। अथर्ववेद के अनुसार पुराण का आविर्भाव ऋक्, साम,छन्द और यजुस के साथ ही हुआ था अतः 'पुराण' को वेद भी कहा गया है। पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व क्या है? इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

15.2 उदेश्य

इस इकाई में पुराणों के ऐतिहासिक महत्त्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

- पुराणों के अर्थ के विषय में आप परिचित होंगे।
- पुराणों के लक्षणों के विषय में आप परिचित होंगे।
- पुराणों के ऐतिहासिक महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे।
- पुराणों को वेद कहा गया है इस विषय में आप परिचित होंगे।
- पुराणों के धार्मिक महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे।

15.3 पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व

'पुराण' शब्द प्राचीन धार्मिक साहित्य के अर्थ में वैदिक युग से ही प्रचलित है। धर्म का अङ्ग बनाकर प्राचीन कथाओं, वंशावलियों, इतिहास, भूगोल के तथ्यों एवं सामान्यतः ज्ञान के सभी विषयों को पुराणों में काल क्रम से समाविष्ट कर दिया गया। महाभारत के समान 'पुराण' भी विकाशील साहित्य रहा है जिसका अन्तिम सम्पादन व्यास ने ही किया था। अथर्ववेद के अनुसार पुराण का आविर्भाव ऋक्, साम, छन्द और युजस् के साथ ही हुआ था (ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह 11/7/24)। शतपथ ब्राह्मण (14/3/3/ 13) में 'पुराण' को वेद कहा गया है। सम्भवतः युगके प्राचीन आख्यानों का संकलन करने के लिए एक पृथक् साहित्य भेद का जन्म हुआ, जिसे 'पुराण' कहा गया और इसका संकलन उसी समय आरम्भ हुआ जब विच्छिन्न वैदिक मन्त्रों का संहिता करण होने लगा। उपर्यूक्त तथ्य इस सामान्यता का समर्थन करते हैं। (छान्दोग्योपनिषद्(7/1/2)में इतिहास तथा पूराण को संयुक्त रूप से नारद ने'पञ्चम वेद कहा हैं–इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।

बृहदारण्यकोपनिषद् (2/4/10) में भी इतिहास पुराण को वेदों के समान परमात्मा के निःश्वास के रूप में निर्गत कहा गया है (अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्) यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः इतिहासः पुराणम्.....)। इस प्रकार वेदों के समकक्ष पुराणों को प्राचीन वाङ्गमय में रखा गया।

इतिहास तथा पुराण को प्राचीन साहित्य में समान स्तर पर रखा गया है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त महाभारत में भी कहा गया है– इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्। अर्थात् वेद के अर्थ का पल्लवन इतिहास और पुराण के द्वारा करना चाहिए। वस्तुतः वेदों के क्लिष्ट कर्मकाण्ड को रोचक बनाने के लिए चार प्रकार के साहित्य आविर्भूत हुए–इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी। कालक्रम से संक्षेप की दृष्टि से केवल प्रथम दो अवशिष्ट रहे। वैदिक युग में 'इतिहास' का प्रयोग प्राचीन तथा शाश्वत व्यवस्था के अर्थ में था जैसे अथर्ववेद के विराट् ब्रह्म, ज्येष्ठ ब्रह्म, इन्द्र आदि के अर्थ में। 'पुराण' का प्रयोग पुरावृत्त तथा पुरातत्त्व से सम्बद्ध सृष्टि, प्रलय, भूगोल, निहित थीं चाहे वे नैतिक हों, वास्तविक हों या काल्पनिक हों। इन्द्र वृत्र की कथा (ऋग्वेद 2/15) पूरूरवा उर्वशी की कथा (ऋ० 10/15) विश्वामित्र नदी संवाद में निहित कथा (ऋग्वेद3/33) इत्यादि ऐसी ही कथाएँ हैं। 'नाराशंसी' के अन्तर्गत वीरों की प्रशंसा, वीर गाथा, वीरों का अभिनन्दन आदि निहित था जैसे–ययाति नाहुषः (ऋ०9/101/4–6),नहुषः मानवः (ऋ० 9/101/7–2), परीक्षित् (अथर्व० 20/927) इत्यादि। वैदिक युग के इन पारिभासिक शब्दों को संक्षिप्त करके उनमें नई अर्थ व्यञ्जना आरोपित हुई।

पुराणों में'पुराण' शब्द को स्वीकार करके इन समस्त भेदों का अन्तर्भाव उसी में कर लिया गया। बाद में संस्कृत साहित्य में पुरानी विधाओं का पुनः उद्धार हुआ, जिससे 'इतिहास' ऐतिहासिक काव्य के रूप में, 'पुराण' केवल पौराणिक (पुरातत्त्वविषयक) ग्रन्थों के रूप में, 'गाथा' संस्कृत कथाओं के रूप में और 'नाराशंसी' रामायण, महाभारत आदि वीर काव्यों के रूप में परिणत हुए। आधुनिक युग में प्राप्त पुराण (अष्टादश पुराण और उपपुराण) परवर्ती हैं, वैदिकयुगीन नहीं। इन पुराणों की दृष्टि से 'पुराण' शब्द का निर्वचन कई प्रकार से किया गया है– (1) पुराणमाख्यानं पुराणम्– प्राचीन आख्यानों को पुराण कहते हैं।(2) वायुपुराण(1/203) के अनुसार प्राचीन काल में जो सजीव घटनाएं थीं उन्हें पुराण कहते हैं–यस्मात्पुरा ह्यनति।(3)सायण

(एतरेयब्राह्मणभाष्य की भूमिका) के अनुसार– संसार की उत्पत्ति और विकासक्रम के बोधक साहित्य को पुराण कहते हैं– जगतः प्रागवस्थामनुक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्। (4)पद्मपुराण में कहा गया है–पुरार्थेषु आनयतीति पुराणम् अर्थात् प्राचीन विषयों में जो श्रोता को ले जाता है वही पुराण है।(5) वायुपुराण (1/253) में कहा गया है–पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्। (6) मधुसूदन सरस्वती वे 'विश्वसृष्टि के इतिहास' को पुराण कहा है। (7) यास्क ने निरूक्त में जो पुराण का निर्वचन दिया है, वही अत्यधिक प्रचलित निर्वचन है– पुरा नवं भवति (निरूक्त 3/19)। प्राचीन काल में जो विषय नया रहा हो वही पुराण है, यास्क की कल्पना बहुत रोचक है।

पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व–पुराणों में महाभारत युद्ध के पूर्व के राजाओं की वंशावली जो श्रुति–परम्परा के आधार पर दी ही गयी है। इसके बाद के राजाओं में परीक्षित् से लेकर पद्मनन्द का इतिहास भी ज्ञात अभिलेखों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यह कालखण्ड भारतीय इतिहास के लिए अभी तक अज्ञात ही है। तथाकथित ऐतिहासिक काल के भी कुछ राजवंशों का विवरण (भविष्यवाणी के रूप में) पुराणों में प्रस्तुत है। मौर्य वंश के लिए विष्णु पुराण, आन्ध्रवंश के लिए मत्स्य पुराण तथा गुप्त वंश के लिए वायुपुराण अत्यधिक प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं। ऐसा पार्जिटर तथा स्मिथ जैसे अंग्रेज इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है। इनके अन्त में पुराणों ने भारत की दुर्दशा करने वाले कुछ विदेशी और बर्बर जातियों के राजवंशों का भी उल्लेख किया है जैसे– आभीर, गर्दभ, शक, यवन, कुषाण, हूण आदि। इसलिए कुछ कालों के इतिहास के अनावरण के लिए एकमात्र स्रोत के रूप में पुराणों का महत्त्व है

पुराणों में वंश एवं वंशानुचरित के अन्तर्गत पौराणिक और वैदिक युग के ऋषियों और राजाओं की वंशावली के अतिरिक्त नन्द, मौर्य, शुंग, आन्ध्र तथा गुप्त वंश के राजाओं की सूचियां पुराणों में दी गयी हैं, जिन पर आधुनिक इतिहासकारों को अत्यधिक विश्वास है।

राम के वंश का वर्णन

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार भाईयों में रामचन्द्र के लव और कुश ये दो पुत्र हुए। लव कुश का वर्णन 'रामायण' महाकाव्य और 'उत्तर रामचरित' नाटक में विस्तार से हुआ है। कुश का राज्य कोशला राज्य कहा गया है और उसकी राजधानी को 'कुशस्थली' कहा गया है। लव का राज्य उत्तर कौशल में बताया गया है और 'श्रावस्ती' उनकी राजधानी कही गई है। रामचन्द्र के छोटे भाई 'शत्रुघ्न' ने लवणासुर का वध किया और लवणासुर के क्षेत्र 'मधुवन' में उसकी सुव्यवस्था के लिए मथुरा पुरी का निर्माण किया और उसका शासन शत्रुघ्न ने अपने पुत्रों के साथ संभाला। 'सुबाहु' तथा 'शूरसेन' के सहित उन्होंने मथुरापुरी का पालन किया। लक्ष्मण के 'अंगद' और 'चन्द्रकेतु' दो पुत्र हुए, जिनका शासन हिमालय पर्वत के पार्श्वभाग में स्थापित हुआ। अंगद की पुरी का नाम अंगदीया था, जो 'कारपथ' प्रदेश में थी और 'चन्द्रकेतु' मल्लवंश का संस्थापक हुआ, जिसकी राजधानी का नाम 'चन्द्रवक्ता' था। भरत के दो पुत्र थे तक्ष और पुष्कर। इनका राज्य गान्धार प्रदेश में था। तक्ष की पुरी तक्षशिला थी, जो चारों दिशाओं में तथा भारतीय इतिहास में सुविख्यात है। पुष्कर की राजधानी पुष्करावतीपुरी कहलाती थी। जो पुष्कलावती के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है, जो पेशावर के पास अवस्थित थी। राम का ज्येष्ठ पुत्र कुश था। अतः कुश की सन्तानों का ही उल्लेख 'वायुपुराण' ने किया है, जो क्रमशः इस प्रकार है सूर्यवंश के राजाओं की यह सूचि केवल मुख्य मुख्य राजाओं की ही है। आधुनिक ऐतिहासिक पुराणों
के इन राजाओं की नामावलियों के आधार पर यह दिखाने की चेष्टा करते हैं कि भारतीय युगानुसारिणी वर्ष गणना या तो काल्पनिक है या पारिभाषिक ही मानते हैं

क्योंकि स्वयं वेदभाग में 'शतायुर्वै पुरुषः' कहा है जिसका तात्पर्य है कि वेदों में पुरुष के आयुष्य की कालगणना में सौ वर्ष ही निश्चित किये गये हैं।

परन्तु, आधुनिक विद्वानों के निष्कर्ष से हम सहमत नहीं है कि पुराणों में उल्लिखित राजाओं के नामों की गणना करके प्रत्येक राजा के शासनकाल को बीस बीस या बाईस बाईस वर्षों का नियत करके उनके जोड़ने से जो वर्ष गणना आई वही भारतवर्ष के इतिहास की कालसीमा है। पुराणों में बहुत कम केवल वीरता, सुशासन आदि गुणों के आधार पर जो राजा प्रसिद्ध हो गये थे, उनके नामों का उल्लेख कर दिया गया है, जिसके सम्बन्ध में प्रमाण पूर्वक हमने उल्लेख किया है।

पुराणों के पॉच लक्षण

प्रमुख पुराणों तथा अमरकोष जैसे प्राचीन ग्रन्थों में पुराण के लक्षण तथा विषयवस्तु के सम्बन्ध में यह श्लोक मिलता है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराण च।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

तदनुसार पुराण ग्रन्थ में पाँच विषयों का प्रतिपादन होता है– (1) सर्ग विश्व की सृष्टि की प्रक्रिया, (2) प्रतिसर्ग प्रलय तथा पुनः सृष्टि का वर्णन, (3) वंश देवताओं और ऋषियों के वंशों का वर्णन, (4) मन्वन्तर प्रत्येक मनु का काल और उस काल की प्रमुख घटनाओं का निरूपण एवं (5) वंशानुचरित– सूर्यवंश और चन्द्रवंश में उत्पन्न राजाओं का जीवन चरित।

यह लक्षण उस समय बना था जब इन विषयों से समन्वित पुराणों का रूप स्पष्ट हो चुका था किन्तु कालक्रम से पुराणों में अन्य अनेक विषयों का संकलन होने लगा और मूल पुराणलक्षण अभिभूत हो गया। 'विष्णुपुराण' एकमात्र ऐसा पुराण है जिसमें ये लक्षण घटित होते हैं।

अन्य पुराणों में ये पाँच लक्षण आंशिक रूप से ही प्राप्त होते हैं। कुछ पुराण तो इन लक्षणों का स्पर्श भी नहीं करते।वर्तमान पुराणों का स्वरूप दार्शनिक या ऐतिहासिक नहीं अपितु धार्मिक है, जिसके कारण विष्णु या शिव की भक्ति या उपासना को ही अधिकांश पुराण समर्पित हैं। तदनुकूल विषयों का ही इनमें समावेश है। विभिन्न देवताओं की स्तुतियां, पुण्य लाभ के लिए किये जाने वाले व्रत, उत्सव तथा उपवास, तीर्थ आदि का विस्तृत वर्णन सभी पुराणों में है। अग्निपुराण में ज्योतिष, शरीर विज्ञान, व्याकरण, शस्त्र प्रयोग, चिकित्सा, साहित्यशास्त्र आदि विषयों का विवरण दिया गया है।

'**वंशानुचरित**' के अन्तर्गत प्राचीन राजवंशों का विवरण भी कुछ पुराणों में (मत्स्य, वायु, ब्रह्मण्ड, भविष्य, विष्णु, भागवत तथा गरुण पुराणों) में मिलता है। सूर्यवंश और चन्द्रवंश के प्रथम राजाओं से आरम्भ करके इन वंशों का वर्णन महाभारत के युद्ध में भाग लेने वाले राजाओं तक चलता है। पुराणों को व्यास के द्वारा रचित माना गया है और व्यास पाण्डवों के समकालिक माने गये है; इसलिए ये राजवंश वर्णन उस समय तक'भूतकाल' में किये गए हैं। इसके बाद में कलियुग के राजाओं का वर्णन'भविष्यकाल'में किया गया है।कलियुग के राजाओं की सूची में शिशुनाग,नन्द, मौर्य, शुंग, आन्ध्र तथा गुप्त वंशों के राजाओं की सूची प्राप्त होती है। ये वंश इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इन सूचियों में कुछ असंगतियां अवश्य हैं किन्तु सामान्य रूप से इन्हें भारतके प्राचीन राजनीतिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है।स्मिथ

ने कहा है कि मौर्यवंश (326 ई० पू०–185 ई० पू०) के विषय में विष्णुपुराण तथा आन्ध्रवंश के विषय में मत्स्यपुराण विश्वसनीय है। वायुपुराण चन्द्रगुप्त प्रथम (32०–33० ई०) के काल की राज्य व्यवस्था का वर्णन करता है। राजाओं की सूचियों के अन्त में ये पुराण आभीर, गर्दभ, शक, यवन, कुषाण, हूण आदि शूद्र तथा मलेच्छ राजाओं की वंशावलियाँ देते हैं जो पूर्वोक्त राजाओं के ई० तक का वर्णन कुछ पुराणों में भविष्यवाणी के रूप में है। यहाँ हम भविष्यपुराण को छोङ दें जिसमें 16 वीं शताब्दी ई० तक वर्णन जोड़ा गया है

पुराणों में वंश परम्परा–

पुराणों में ऋषिवंश या राजवंश का जो वर्णन प्राप्त होता है, उसका आरम्भ वैवस्तव मन्वन्तर के आरम्भ से ही होता है। इतने समय में सत्ताईस चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी है और अट्ठाईसवें चतुर्युगी के भी तीन युग व्यतीत हो गये हैं। इस अवधि में चौथा कलियुग चल रहा है। इतने लम्बे काल के इतिहास की रूपरेखा हमारे यहाँ सुरक्षित है किन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि इस बात पर हमारे ही देश के अधिकतर आधुनिक विद्वान् विश्वास नहीं करते। वे युग शब्द के भिन्न भिन्न तथा अनर्गल अर्थ लगाकर समय के संकोच की प्रक्रिया में लगे हुए हैं। कुछ लोग 'युग' शब्द को अँग्रेजी के 'पीरियड' शब्द का समानार्थक मानते है जैसे आजकल हिन्दी में 'भारतेन्दु युग', 'द्विवेदी युग' इत्यादि व्यवहृत होते हैं। कुछ विद्वान् पुराणों में वर्णित बारह हजार दैव वर्ष की चतुर्युगी को ही मानुष वर्ष मानते हैं। 'बंगीय साहित्य परिषद्' के श्रीगिरीश चन्द्र बसु ने अपनी कल्पनाओं के आधार पर पुराने ऋषि, राजा आदि को बहुत अर्वाचीन सिद्ध करने के लिए जितना ही अधिक प्रयत्न किया गया कल्पनाएँ की गईं, पुराणों में उन कल्पनाओं के विरुद्ध उतने ही अधिक प्रमाण मिले हैं। इसीलिए विरोध में जब तक कोई दृढ़ और सर्वमान्य प्रमाण नहीं प्राप्त हो जाता, तब तक हम वैवस्तव मनु से ही अपने इतिहास का आरम्भ मानने के लिए विवश हैं

आधुनिक विद्वानों का कहना है कि यदि वैवस्तव मनु से राजाओं की वंश परम्परा मानी गई है तो पुराणों में इतने अल्प नाम क्यों आये हैं ? नामों की संख्या तो लाखों हजारों तक की जा सकती थी ?

इसके अतिरिक्त वे यह भी कहते हैं कि पुराणों में प्रत्येक राजा की हजारों वर्षों की आयु लिखी है, जो पुराणकर्त्ताओं की कोरी कल्पना तथा अविश्वसनीय बात है।

उदाहरणस्वरूप रामायण में वर्णित महाराज दशरथ के इस वाक्य को लीजिए–

षष्टिवर्षसहस्त्राणि जातस्य मम कौशिक।

दुःखेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि।।

अर्थात् ''हे कौशिक, मैंने साठ हजार वर्ष की आयु बिताकर इस वृद्धावस्था में बड़ी कठिनता से राम को पाया है। इतना ही नहीं, 'राम' के विषय में भी कहा गया है–

वशवर्षसहस्त्राणि दशवर्षशतानि च।

रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्पति।।

अर्थात्, 'दस हजार, दस सौ वर्ष राज्य करने के बाद राम ब्रह्मलोक को जायेगें । पुराणों में वर्णित इस तरह के सारे वाक्य अनर्गल हैं।'

कुछ विद्वान् इन ग्रन्थों के रचनाकाल का ज्ञान ठीक से नहीं रखते हैं और न ही यह बात जानते हैं कि शब्दों के अर्थों में कब और कितना परिवर्त्तन हुआ और हो रहा है।

प्राचीन मीमांसा दर्शन में वर्ष शब्द का अर्थ दिन आया है। इस विषय पर मीमांसा दर्शन में अनेक विचार हैं और वहाँ यह भी कहा गया है कि 'शतायुर्वै पुरुषः' अर्थात्, मनुष्य की आयु सौ वर्ष ही श्रुति में मानी गई है। उसके विरुद्ध अधिक आयु मनुष्य की नहीं मानी जा सकती। श्रुति में ऐसे भी वाक्य मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि सौ वर्ष से कुछ ऊपर भी मनुष्यों का जीवन होता है। किन्तु, ज्योतिषशास्त्र में अधिक से अधिक एक सौ बीस या एक सौ चौलीस वर्ष की आयु निश्चित की गई हैं। जहाँ वर्ष शब्द का अर्थ दिन मानने पर आयु बहुत अधिक प्रतीत हो वहाँ एक हजार वर्ष का अर्थ एक वर्ष मानना चाहिए। इस प्रकार, दशरथ के साठ हजार वर्ष वाले कथन में साठ हजार वर्ष शब्द का अर्थ होगा पूरे साठ वर्ष। स्मृति या पुराणों में सत्ययुग, त्रेतायुग आदि में जो चार सौ या तीन सौ वर्ष की मनुष्य की आयु लिखी गई है, उसका तात्पर्य है कि सत्ययुग, त्रेतायुग आदि का परिमाण कलियुग से चतुर्गुण या त्रिगुण माना जाता है। इसलिए कलियुग के सौ वर्ष ही उन युगों के चार सौ या तीन सौ कहे जाते हैं। इससे उन वाक्यों का श्रुति से विरोध नहीं समझना चाहिए। इसी प्रकार बहुत बहुत काल के अन्तर पर होने वाले राजाओं के समय में भी किसी एक ऋषि के ही अस्तित्व का वर्णन पुराणों में पाया जाता है। उदाहरण केलिए, वसिष्ठ और विश्वामित्र के अस्तित्व को लिया जा सकता है, जो हरिश्चन्द्र और उनके पिता त्रिशुंक आदि राजाओं के समय में भी उपस्थित हैं तथा दशरथ और राम के समय में भी। इसी प्रकार परशुराम, भगवान् राम के समय में उनसे धनुर्भंग के कारण विवाद करते देखे जाते हैं और महाभारत काल में भी भीष्म, कर्ण आदि को भी उन्होंने विद्या पढ़ाई,।

पुराणों का आचार विषयक महत्त्व – पुराणों में दान, दया, अतिथि–सेवा, सर्वधर्म सम्भाव, उदार दृष्टि, व्रत के प्रति निष्ठा इत्यादि मानवीय गुणों का प्रकाशन कथाओं के द्वारा किया गया है।सदगुणों के प्रति आकर्षण और दोषों से निवृत्ति के लिए स्वर्ग और नरक का काल्पनिक वर्णन करके जनवर्ग के नैतिक नियन्त्रण का प्रयास पुराणों में पर्याप्त रूप से किया गया है।

पुराणों में ज्ञान विज्ञान का महत्त्व –कुछ पुराणों में व्याकरण, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, शरीर विज्ञान आदि शासत्रीय तथा वैज्ञानिक विषयों का संकलन है।

इस प्रकार पुराणों में विविध विषयों का संग्रह है जो जनता की शिक्षा के लिए र्प्याप्त हैं। हिन्दू धर्म का विश्वकोष ही पुराणों का प्रतिपाद्य है।

पुराणों को संख्या तथा विभाजन

पुराणों का विकास दो रूपों में हुआ है– महापुराण तथा उपपुराण। **महापुराण** प्राचीनतर हैं जिनकी संख्या अठारह है। इस विषय में एक संग्रहश्लोक मिलता है।

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टय।

अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्–पृथक्।।

अर्थात् 'म' से दो पुराण– मत्स्य तथा मार्कण्डेय,'भ' से दो पुराण– भविष्य तथा भागवत्, 'ब्र' से तीन पुराण– ब्रह्म, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मवैवर्त, 'व' से चार पुराण– विष्णु, वामन, वराह तथा वायु। पुनः 'अ' से अग्नि, 'ना' से नारद, 'प' से पद्म, 'लिं' से लिङ्ग, 'ग' से गरुङ, 'कू' से कूर्म और स्क' से स्कन्द– ये 18 पुराण पृथक् पृथक् हैं। इनका विभाजन आगे दिखाया जायेगा।

उपपुराणों की संख्या

उपपुराण भी संख्या में 18 कहे गहे हैं– सनत्कुमार, नारसिंह, स्कान्द (या शिव), शिवधर्म, आश्चर्य, नारक्षिय, कापिल, औशनस, वारुण, कल्कि, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, सौर, (सूर्य) पाराशर, मारिच, भार्गव तथा नन्द। यह सूची विविध पुराणों या उपपुराणों में पृथक् पृथक् है। कहीं चण्डीपुराण, मानवपुराण, गणेशपुराण, नन्दपुराण, विष्णुधर्मोत्तर इत्यादि का भी उल्लेख है। इनमें अधिसंख्यक उपपुराण उपलब्ध हैं। पौराणिक सामग्री से ही इनकी भी रचना हुई है।

पुराणों का विभाजन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राचीन और परवर्ती के रूप में होता है। प्राचीन का अर्थ 'पञ्चलक्षण' को स्वीकार करना है। तदनुसार वायु, ब्रह्मण्ड, मतस्य और विष्णुपुराण को प्राचीन कहा गया है। अन्य पुराणों में इसका अनुपालन न होने से वे परवर्ती हैं। पुराणों का अन्य विभाजन, सात्त्विक, तामस और राजस के रूप में हुआ है जो क्रमशः विष्णु, शिव और ब्रह्म या अन्य देवताओं को महत्त्व देने के आधार पर है। स्पष्ट रूप से यह विभाजन वैष्णव दृष्टिकोण का परिचायक है। इसके अनुसार पुराण इस प्रकार विभाजित हो सकते हैं–

सात्त्विक (वैष्णव) पुराण विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुङ, पद्म तथा वराह।

तामस (शैव) पुराण– मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, अग्नि तथा स्कन्द।

राजस (ब्राह्म) पुराण– ब्रह्मण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, ब्रह्म, वामन तथा भविष्या

जहाँ तक देवताओं की प्रशस्ति का प्रश्न है, स्कन्दपुराण में दस का सम्बन्ध शिव से, चार का ब्रह्म से और दो दो का देवी और विष्णु से सम्बन्ध माना गया है। यह स्पष्टतः शैव दृष्टिकोण है–

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।

चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्म द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।

मत्स्यपुराण (53/38–9) में कहा गया है कि सात्त्विक पुराणों में विष्णु का, राजस पुराणों में ब्रह्म का तामस पुराणों में अग्नि और शिव का एवं संकीर्ण पुराणों में सरस्वती तथा पितरों का माहात्म्य अधिक दिखाया गया है।

इन परम्परागत विभाजनों से अधिक सन्तोषप्रद वर्गीकरण आधुनिक दृष्टि से महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने किया गया है जो पुराणों की विषय–वस्तु की गम्भीर समीक्षा पर आश्रित हैं। उन्होंने विषय वस्तु के आधार पर पुराणों को निम्नाङ्किकत छह वर्गों में रखा है–

प्रथम वर्ग में समस्त वाङ्मय के कोष (विश्वकोष) का रूप धारण करने वाले गरुङ, अग्नि तथा नारद पुराण रखे जा सकते हैं। इनमें संस्कृत भाषा के ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी सभी श्रेष्ठ ग्रन्थों का सार प्रस्तुत है जैसे– आयुर्वेद, व्याकरण, नाटयशास्त्र, संगीत, ज्योतिष आदि। अन्य पौराणिक विषय भी इनमें निहित हैं।

द्वितीय वर्ग में पद्म, स्कन्द तथा भविष्य पुराण हैं, जो मुख्य रूप से तीर्थों और व्रतों की विवेचना करते हैं। इन पुराणों की मौलिक सामग्री बार–बार किये गये संशोधनों और संस्करणों के कारण लुप्तप्राय हो गयी है।

तृतीय वर्ग के पुराणों में दो बार सामान्य संशोधन किये गये थे। इनमें ब्रह्म, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण आते हैं। इन पुराणों में मौलिक रचना ग्रन्थ के बीच में है तथा उसके दोनों ओर अतिरिक्त सामग्री का संकलन दो दो बार किया गया।

चतुर्थ वर्ग में ऐतिहासिक पुराणों का है जिसमें ब्रह्माण्ड तथा लुप्त हो चुका वायु पुराण ये दोनों हैं। हरप्रसाद शास्त्री का कथन है कि वायुपुराण के द्वितीय खण्ड का कुछ भाग एक हस्तलेख में सुरक्षित है, शेष भाग नष्ट हो चुका है। वर्तमान वायुपुराण ब्रह्मण्डपुराण में समाहित है।

पञ्चम वर्ग में साम्प्रदायिक पुराणों की गणना करायी गई है लिङ्ग, वामन तथा मार्कण्डेय। लिङ्गपुराण में शिव के प्रतीक के रूप में लिङ्गपूजा का महत्त्व निरूपित है, वामन पुराण शैव सम्प्रदाय का धर्मग्रन्थ है, तो मारकण्डेय में देवी का महत्त्व इङ्गित है।

षष्ट वर्ग में पुराणों को रखा गया है जो प्राचीन थे किन्तु इतनी बार संशोधित हुए कि इनका स्वरूप नष्ट हो गया। इनमें वराह, कूर्म तथा मत्स्य पुराण हैं। विष्णु के इन अवतारों के द्वारा ही सम्पूर्ण प्रवचन की अपेक्षा इन पुराणों में की जाती है किन्तु वराह द्वारा वराहपुराण के केवल आधे भाग का ही प्रवचन हुआ है, मत्स्यपुराण में मत्स्य केवल तृतीयांश से ही सम्बद्ध हैं और कूर्मपुराण का अष्टमांश मात्र कुर्म प्रोक्त है।इस विभाजन में भी कुछ असंगतियाँ हैं किन्तु अद्यावधि किये गये विभाजनों में यह सन्तोषप्रद है।विष्णुपुराण को इसमें स्थान नहीं दिया गया है क्योंकि 'पञ्चलक्षण' पर सर्वाधिक खरा उतरने के कारण यह प्राचीनतम रूप में है।

पुराणों का रचनाकाल

पुराण एक विकासशील साहित्य है। वैदिक युग के अनन्तर ही पुराण विद्या का आरम्भ हुआ तथा कालक्रम से इसमें विविध सामग्री जुङती गयी। व्यास ने आरम्भ में इस ज्ञान को क्रमबद्ध किया। उन्होंने अपने शिष्य लोमहर्षण को यह ज्ञान दिया। लोमहर्षण की शिष्य परम्परा में यह ज्ञान पल्लवित पुष्पित होता गया। सभी शिष्यों ने मूलगुरू व्यास के नाम पर ही पुराणों में अतिरिक्त सामग्री का संयोजन किया।सभी पुराण संशोधक 'व्यास' के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार 'व्यास' एक नाम नहीं रह कर कथावाचकों, संशोधकों और व्याख्याताओं का पर्याय बनकर विकासात्मक पौराणिक साहित्य के रचयिता के रूप में आया। फिर भी इस साहित्य का समापन काल तो कुछ होना ही चाहिए।

पुराणों के राजवंश–वर्णनों में 600 ई० के पूर्व तक के राजाओं का ही निरूपण हुआ है अतः एव कुछ विद्वानों का मत है कि पुराण 500 ई० में अवश्य ही अपने वर्तमान रूप में आ गये थे। फिर भी इसमें पर्याप्त मतभेद हैं। दूसरी ओर प्राचीन धर्मसूत्रों तथा महाभारत में पुराणों का उल्लेख है जिससे पुराणों की रचना का आरम्भ प्रायः 600 ई० पू० में माना जा सकता है। इन 1100 वर्षों के अन्तराल में पौराणिक साहित्य का शनैः शनैः विकास होता रहा था।

बाल गङ्गाधर तिलक ने पुराणों की रचना का समापान काल दूसरी शाताब्दी ई.माना है। पुराणों में राजनीतिक इतिहास का अध्ययन करने वाले पार्जिटर ने. कहा है कि पुराण अपने मूल रूप में प्रथम शाताब्दी ई० में ही आ गये थे। किन्तु सामग्री का परिवर्धन उपबृंहण आगे भी होता रहा था। आधुनिक भारतीय विद्वानों ने पुराणों के रचना काल के विषय में पर्याप्त अनुसन्धान किया है जिनमें डॉ. आर. सी. हाजरा का योगदान बहुमूल्य है। उन्होंने प्राचीनतम महापुराणों में मारकण्डेय, ब्रह्मण्ड, विष्णु, मत्स्य, भागवत तथा कूर्म को रखा है। विष्णुपुराण की रचना उन्होंने तृतीय चतुर्थ शताब्दी ई.

में मानी है किन्तु ब्रह्मण्ड तथा मार्कण्डेय पुराण (तृतीय से पञ्चम शताब्दी के बीच) उसके पूर्व निर्मित हो चुके थे। वायुपुराण प्रायः 500 ई० में, भागवत पुराण 600 ई० में तथा कूर्मपुराण 700 ई० में लिखा गया। उनका मत है कि हरिवंश की रचना 400 ई० में तथा अग्निपुराण प्रायः 800 ई० में लिखा गया। इसमें कुछ सामग्री पूर्व की भी है और कुछ बाद की भी। अग्निपुराण में काव्यशास्त्रीय अंश रहने के कारण इसके रचनाकाल में सूची काव्यशास्त्र के विद्वानों को भी रही है। डॉ० सुशील कुमार डेंने इस पुराण के अलंकार प्रकरण को भामह दण्डी के बाद किन्तु आनन्दवर्धन (850० ई०) से पूर्व का बताया है। पी. वी. काणे इस पुराण को 700 ई० के पश्चात् तथा उसके काव्यशास्त्रीय अंश को 900 ई० का स्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त वायु, ब्रह्मण्ड, विष्णु तथा भागवत पुराणों में गुप्तकाल तक के राजाओं की सूची दी गई है इसलिए गुप्त काल में प्रायः 400–450 ई० के बीच इनका अन्तिम संस्करण हो गया था। गुप्त नरेश संस्कृत के बहुत बडे संरक्षक थे, अतएव उनके काल में पुराणों का विपुलांश अपना अन्तिम रूप ले रहा था। बाणभट्ट (600–650 ई०) ने अपने गाँव में वायुपुराण के वाचन का उल्लेख किया है। मार्कण्डेय पुराण के देवी महात्मय के आधार पर ही बाण ने 'चण्डीशतक' की तथा भवभूति ने 'मालतीमाधव' के कुछ भाग की रचना की है। अतः ये पुराण भी 6ठी शाताब्दी ई० में प्रचलित थे।

डॉ० हाजरा ने नारदीय पुराण को दशम शताब्दी ई० में रचित माना है। ब्रह्मवैवर्त पुराण की रचना 700 ई० में हो गयी थी किन्तु इसे वर्तमान रूप 1600 ई० में प्राप्त हुआ था।इससे स्पष्ट है कि पुराणों का रचना काल एक निश्चित कालखण्ड में नहीं रखा जा सकता। यह विकासशील साहित्य है। अल–बिरुनी (1000 ई०) नामक अरब यात्री ने अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष का इतिहास'(तारीखुल हिन्द) में अठारह पुराणों का उल्लेख इस क्रम से किया है–आदि, मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, वायु, नन्द (महादेव के सेवक), स्कन्द, आदित्य, सोम, साम्ब, ब्रह्मण्ड, मार्कण्डेय, तार्क्ष्य (गरुड), विष्णु, ब्रह्म तथा भविष्य। इनकी सूची उस अरब यात्री ने लोगों से सुनकर दी है जिससे पुराणों और उपपुराणों का भी इस सूची में संग्रह हो गया है। उसने स्वयं मत्स्य, आदित्य तथा वायुपुराण के अंश देखे थे। जो भी हो, 1000 ई० के आस पास पुराणों का उपपुराणों के साथ पर्याप्त प्रचार हो चुका था। इनका प्रारम्भ 500 ई० पू० में एक पृथक् साहित्य के रूप में हुआ किन्तु इनकी आकार वृद्धि धार्मिक और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप होती गयी। अष्टादश महापुराणों से जब साहित्यिक परितोष नहीं हुआ तब उपपुराणों का भी क्रम चला। इस प्रकार चार लाख श्लोकों में महापुराण तथा अन्य अनेक लाख श्लोकों में परवर्ती उपपुराण का विपुल साहित्य विकासित हुआ।

15,4 सारांश

इस इकाई में आम पुराणों के विषय में विशेष रूप से वर्णन किया गया है विकासक्रम के बोधक साहित्य को पुराण कहा गया है प्रमुख पुराणों तथा अमरकोष जैसे प्राचीन ग्रन्थों में पुराण के लक्षण तथा विषयवस्तु के सम्बन्ध में बताया गया है। साकल्य रूप से पुराणों में प्रतिपादित विषय वस्तु का निर्देश किया गया है। मुख्य पुराणों में विष्णु के विविध अवतारों का वर्णन या शिव और उनके परिवार की विभिन्न कथाएं वर्णित हैं पुराणों में जनसामान्य को धार्मिक बनाने का प्रयास भी किया गया है। पुराणों के दार्शनिक विषयों को धर्म से जोड़ा गया है। पुराणों के 'भुवनकोश' प्रकरण के अन्तर्गत भूमण्डल का वर्णन किया गया है। पृथ्वी के सप्त सागर, सप्तद्वीप आदि के अतिरिक्त भारतवर्ष के पर्वतों, नदियों और विविध तीर्थ स्थलों का वर्णन पुराणों में मिलता है।

भारत की भौगोलिक एकता का निरूपण करके राजनीतिक दृष्टि से पृथक् पृथक् राज्यों में विभक्त देश का सांस्कृतिक समन्वय करने में पुराणों का प्रभूत योगदान है। कुछ पुराणों में व्याकरण, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, शरीर विज्ञान आदि शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक विषयों को जोड़ा है।इस प्रकार पुराणों में विविध विषयों का संग्रह है जो जनता की शिक्षा के लिए पर्याप्त हैं। हिन्दू धर्म का विश्वकोश ही पुराणों का प्रतिपाद्य है। देश विदेश के असंख्य विद्वानों तथा दार्शनिकों ने पुराणों के प्रति आदर भाव प्रकट किया है। इन सबका विशेष प्रकार से प्रयोग बताया गया है।

15.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
ऋक	ऋग्वेद
साम	सामवेद
यजुस्	यजुर्वेद
समानि	समान
छन्दांसि	वेदों में
यजुषा	यजुर्वेद के द्वारा
सह	साथ

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न उत्तर

1) प्रश्न– पुराण ग्रन्थ में कितने विषयों का प्रतिपादन किया गया है

   उत्तर–पाँच

2) प्रश्न– विश्व की सृष्टि की प्रक्रिया है

   उत्तर–सर्ग

3) प्रश्न– पुराणों में कितने लक्षण आंशिक रूप से ही प्राप्त होते हैं

   उत्तर– पाँच

4) प्रश्न– तीर्थ आदि का विस्तृत वर्णन है

   उत्तर– सभी पुराणों में

5) प्रश्न– अग्निपुराण में किसका वर्णन है

   उत्तर– ज्योतिष, शरीरविज्ञान, व्याकरण, शस्त्र प्रयोग, चिकित्सा, साहित्य आदि शास्त्रों का

15.6 वहुविकल्पीय प्रश्न उत्तर

1) प्रश्न– प्राचीन आख्यानों को कहते हैं

   1 आगम   2 वेद

   3 निगम   4 पुराण उत्तर

2) प्रश्न– आधुनिक युग में पुराणों की संख्या है

1 एक 2 तीन

2 अठारह 4 सात उत्तर (3)

3) प्रश्न–पुराणों के 'भुवनकोश' प्रकरण के अन्तर्गत किसका वर्णन किया गया है।

1 आगम 2 व्याकरण

3 भूमण्डल 4 पुराण उत्तर 3

4) प्रश्न– उपपुराणों की संख्या है

1 एक 2 तीन

3 अठारह 4 सात उत्तर (3)

5) प्रश्न– पुराणों का विकास कितने रूपों में हुआ है

1 एक 2 दो

3 अठारह 4 सात उत्तर (2)

15.8 सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1) पुस्तक का नाम–संस्कृत साहित्य का इतिहास–
लेखक का नाम– उमाशंकर शर्मा ऋषि
सम्पादक का नाम–उमाशंकर शर्मा ऋषि
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी।

2) पुस्तक का नाम– श्रीमद् भागवत महापुराण
प्रकाशक का नाम–गीताप्रेस गोरखपुर।

3) पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्य
लेखक का नाम– पतंजलि।
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुभारती प्रकाशन वाराणसी।

4) पुस्तक का नाम– वैदिक साहित्य
लेखक का नाम– कपिलदेव द्विवेदी
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।

15.9 उपयोगी पुस्तकें

1) पुस्तक का नाम–संस्कृत साहित्य का इतिहास
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी
लेखक का नाम– उमाशंकर शर्मा ऋषि
सम्पादक का नाम–उमाशंकर शर्मा ऋषि
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी

2) पुस्तक का नाम– वैदिक साहित्य
   लेखक का नाम– कपिलदेव द्विवेदी
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
3) पुस्तक का नाम– श्रीमद् भागवत महापुराण
   प्रकाशक का नाम–गीताप्रेस गोरखपुर

15.10 निबधात्मक प्रश्न

1) पुराणों के रचनाकाल का वर्णन कीजिये

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 16 पुराणों का सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व

इकाई की रुपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 पुराणों का सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व

16.4 सारांश

16.5 शब्दावली

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न/उतर

16.7 बहुविकल्पीय प्रश्न

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.9 उपयोगी पुस्तकें

16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पुराण साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह दूसरी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि पुराण की आवश्यकता किस प्रकार से हुई? 'पुराण' समाज का अङ्ग बनाकर प्राचीन कथाओं, वंशावलियों, इतिहास भूगोल के तथ्यों एवं सामान्यतः ज्ञान समाज के सभी विषयों को पुराणों में काल–क्रम से समाविष्ट कर दिया गया। जिस प्रकार महाभारत की प्रसिद्धि प्राचीन काल से चला आ रहा है उसी प्रकार 'पुराण' भी प्रसिद्ध रहा है, जिसकी अन्तिम रचना व्यास जी ने ही की थी। पुराणों का सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, शैक्षणिक, नैतिक आदि दृष्टियों से इतना महत्त्व है जितना किसी साहित्य का नहीं हो सकता। पुराणों में सामाजिक सांस्कृतिक आदि सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

16.2 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

- पुराणों के सामाजिक महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे–
- पुराणों के सांस्कृतिक महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे।
- पुराणों के दार्शनिक महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे
- पुराणों के साहित्यिक महत्त्व के विषय में आप परिचित होंग
- पुराणों के नैतिक महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे

16.3 पुराणों का सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व

पुराणों का सामाजिक महत्त्व—पुराणों में भारतीय समाज की व्यवस्था का न केवल चित्रण है, अपितु आदर्श समाज बनाने की व्यापक विधियां वर्णित हैं। वर्णाश्रम के गुण कर्म, विविध संस्कार, पारिवारिक सम्बन्ध,राजधर्म, स्त्रीधर्म, गुरु शिष्य के बीच सम्बन्ध इत्यादि के विवरण हैं। पुराण पूरे समाज के लिए आचार संहिता प्रदान करते हैं। किसी देवता या देवी की उपासना का विधान बताकर उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति पर पुराणों में बल दिया गया है। जिस देवता की भक्ति का विधान है उसे ही श्रेष्ठ कहकर अन्य देवताओं को गौण भी बताया गया है। ब्रह्म, विष्णु और शिव की उपासना का विशेष महत्त्व विविध पुराणों में अङ्कित है। मुख्य पुराणों में विष्णु के विविध अवतारों का वर्णन या शिव और उनके परिवार की विभिन्न कथाएँ वर्णित हैं। अवतारवाद, मूर्तिपूजा और भक्ति का अत्यधिक प्रचार इनमें मिलता है। व्रतों और उपवासों के अनुष्ठान के फल दिखाकर पुराणों में जनसामान्य को सामाजिक बनाने का प्रयास किया गया है। पुराणों के ज्ञान के माध्यम से समाज का उत्थान हुआ। इसलिए सामाजिक जीवन के लिये पुराणों का ज्ञान आवश्यक है

पुराणों का सांस्कृतिक महत्त्व

पुराणों ने प्रायः दो सहस्र वर्षों से भारतीय जन—जीवन को बहुत प्रभावित किया गया है, औपचारिक शिक्षा से वञ्चित जनता में पारम्परिक ज्ञान का वितरण किया है, उसे नैतिक दृष्टि से आदर्शोन्मुख बनाकर भारतीय राष्ट्र के लिए समर्पण भावना में निरत बनाया है तथा आस्तिकवाद की व्यवस्था में रखकर सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँध रखा है। पुराणों का धार्मिक, ऐतिहासिक, शैक्षणिक, नैतिक आदि दृष्टियों से इतना महत्त्व है, जितना किसी साहित्य का नहीं हो सकता। यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार किया जाता है।

पुराणों की सर्वोपरि महत्ता आस्तिकवाद के समर्थन के कारण है। उनमें अनेक देवताओं का वर्णन है। सभी देवताओं की समानता की घोषणा करने पर भी एक देवता की महत्ता दिखाना सभी पुराणों का लक्ष्य रहा है। विशेष रूप से ब्रह्म, विष्णु, शिव, गणेश तथा सूर्य की उपासना पद्धतियों का प्रमाणिक बोध पुराणों से होता है। इन्हीं के आधार पर परवर्ती कर्मकाण्ड ग्रन्थों का विकास हुआ है। विन्टरनित्स का कथन है कि धर्म के इतिहास की दृष्टि से वे अमूल्य है और केवल इसी दृष्टि से उनका अध्ययन होना चाहिए, जो आज तक नहीं हो सका है। ये पुराण हिन्दु संस्कृति के लिये सभी अङ्गों और स्तरों का — पुराण—कथाओं, मूर्तिपूजा, सेर्वेश्वररवाद और एकेश्वरवाद, ईश्वर भक्ति, दर्शन और पूर्वाग्रह, उत्सव और त्योहार, तथा आचार का किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा हमें कहीं अधिक गहन ज्ञान प्रदान करते हैं। हिन्दु संस्कृति की सर्वाधिक स्पष्ट रूपरेखा पुराणों में अङ्कित है। सनातन धर्म पुराणों को वेदों से बढ़कर महत्त्व देता है। नारदपुराण में (उत्तर. 24/17) इन्हें वेदों से अधिक प्रामाणिक कहा गया है क्योंकि वेद अपने प्रचार और व्याख्या के लिए पुराणों पर आश्रित हैं—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।।

पुराणों का दार्शनिक महत्त्व— कुछ पुराणों में अद्भुत दार्शनिक सामग्री मिलती है। सृष्टि के क्रम का रोचक वर्णन करते हुए प्रायः सभी पुराण जगत् की उत्पत्ति का दार्शनिक विवेचन करते हैं। सामान्य रूप से सांख्य दर्शन के सृष्टिक्रम को मूल सृष्टि की व्याख्या करने के लिए स्वीकार किया गया है किन्तु यत्र तत्र वेदान्त के मायावाद,

सर्वेश्वरवाद इत्यादि की भी युगपत् चर्चा है। विष्णुपुराण में विष्णु को ही प्रधान (अव्यक्त), व्यक्त और काल भी कहा गया है। शैव पुराणों में परमात्मा को 'शिव' कहकर ये सारी बाते उन्हीं पर आरोपित हैं। पृथ्वी जब जीवों के निवास के योग्य हो गयी तब ब्रह्म के मानस पुत्रों का आगमन हुआ। इस प्रकार सृष्टि की दार्शनिक व्याख्या की गयी है। भागवत पुराण दर्शन के विवध पक्षों का समन्वय करके भक्ति–दर्शन का सर्वाङ्गपूर्वक विवेचन करता है जिससे 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' की उक्ति प्रचलित है। पुराणं पञ्चलक्षणम् के अनुसार सृष्टि, प्रलय तथा पुनःसृष्टि के दार्शनिक पक्ष को पुरातात्त्विक रूप देखकर अनेक आख्यान पुराणों में प्रस्तुत किये गये हैं। जगत की जन्म, स्थिति और प्रलय को क्रमशः ब्रह्म, विष्णु और शिव से सम्बद्ध करके दार्शनिक विषयों को धर्म से जोड़ा गया है। पुराणों के दार्शनिक स्थलों के विवेचन के लिए पर्याप्त शोधकार्य का अवकाश है।

पुराणों का साहित्यिक महत्त्व– पुराणों में यद्यपि सरल, परिमार्जित तथा स्वाभाविक संस्कृत भाषा का प्रयोग है जो अनेक युगों की जन प्रचलित वाग्धाराओं का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु कुछ पुराणों में काव्यमयी अभिव्यक्ति मिलती है। गद्य पद्य दोनों का मिश्रित रूप साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भागवत पुराण के साहित्यिक सौन्दर्य के अनुशीलन का प्रयास इधर के कुछ ग्रन्थों में हुआ है जिससे पुराणों के साहित्यिक मूल्य पर प्रकाश पड़ता है। कुल मिलाकर पुराण साहित्य भारतवर्ष की ऐसी सम्पत्ति है जिसका मूल्याङ्कन करना आज अत्यन्त आवश्यक है।

पुराणों का शैक्षणिक महत्त्व– भारतवर्ष की जनता प्राचीन काल में अधिकांशतः औपचारिक शिक्षा से वञ्चित रहती थी। वेदों की शिक्षा तो अत्यधिक सीमित थी। फिर भी हमारे देश की जनता को सर्वथा मूर्ख , अविवेकी या असंस्कारी नहीं कहा जा सकता क्योंकि पुराणों के उपदेश उसे सुलभ थे। पुराणों की कथा का आयोजन मुख्य मुख्य क्षेत्रों में होता था, जिन्हें सारी जनता भेद भाव छोङकर सुनती थी। इन कथाओं में अनौपचारिक शिक्षण की व्यवस्था थी।यही कारण है कि कतिपय पुराणों में नीति, दर्शन, धर्मशास्त्र, काव्यशास्त्र, वास्तुविद्या, आयुर्वेद, व्याकरण, ज्योतिष, शरीर विज्ञान आदि शास्त्रीय और वैज्ञानिक विषयों का प्रतिपादन किया गया। परिणामतः अक्षर ज्ञान से रहित जनता भी पुराणों के माध्यम से, केवल श्रवण द्वारा, शिक्षा–संस्कार पाती थी। कथा कहानियों के द्वारा उसे अपने जीवन को आदर्शमय बनाने का सुन्दर अवसर मिलता था।आज के सभी शिक्षा साधनों से भी वह परिणाम नहीं निकल रहा है जो पुराणों की साधारण कथा उत्पन्न करती थी।

पुराणों का नैतिक महत्त्व– पुराणों ने मनुष्य की क्रियाओं को धार्मिक रूप प्रदान करके उन्हें पाप और पुण्य के रूप में विभाजित किया था। यद्यपि वैदिक युग से ही यह कार्यक्रम आरम्भ हो गया था तथा धर्मसूत्रों में इसकी व्यापक व्यवस्था मिलती है किन्तु इस व्यवस्था में विश्वास उत्पन्न करने का कार्य पुराणों ने ही किया था। इसके लिए अनेक रोचक आख्यान बने जिनमें पापकर्म के लिए दण्ड और पुण्यकर्म के लिए पुरस्कार के विवरण दिये गये। इसी प्रसङ्ग में स्वर्ग और नरक का विस्तृत वर्णन कई पुराणों में किया गया। इसका परिणाम हुआ कि भारतीय जनता, आज की जड़वादी संस्कृति के आगमन के पूर्व तक, पुराण–श्रवण के कारण आदर्श जीवन यापन करता थी, जिसकी प्रशंसा चीनी तथा पश्चिमी यात्रियों ने मुक्तकण्ठ से की है। नरक की यातना के भय से अनैतिक तथा पापकर्मों से दूर रहना एवं स्वर्गादि फलों से आकृष्ट होकर व्रत उपवास, दया दान आदि कर्मों में रुचि होना सामान्य भारतीय का जीवन दर्शन था। इसी दृष्टिकोण का साक्षात्कार हमें इस प्रसिद्ध श्लोक में होता है–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

पुराणों का भौगोलिक महत्त्व– अनेक पुराणों में 'भुवनकोश' प्रकरण देकर समस्त भूमण्डल का यथासाध्य ज्ञान देने का प्रकाश किया गया है। विदेशों के वर्णन में भले ही कल्पना या गतानुगतिक सूचनाओं का आश्रय लिया गया हो किन्तु भारत के भूगोल का निरूपण करने में पौराणिक सूचनाएँ प्रायः प्रामाणिक हैं। इनमें न केवल भारत के विभिन्न भूभागों का अपितु उसकी नदियों, पर्वतों, झीलों, वनों, मरुस्थलों, नगरों, प्रदेशों एवं जातियों का भी अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ विवरण प्रस्तुत है। वायु, मत्स्य और मार्कण्डेय पुराणों में भौगोलिक विवरण बड़े हैं जबकि पुराण में यह संक्षिप्त है। पुराणों की सूचनाओं के आधार पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों के भूगोल का अध्ययन आज लोकप्रिय शोधकार्य है जो इनके भौगोलिक महत्त्व का परिचायक है।

पुराणों के ऐसे विषय में सर्वप्रथम भूगोल का नाम आता है। भूगोल का सभी पुराणों में सांगोपांग विस्तृत विवरण है। पहले सम्पूर्ण पृथ्वी का परिमाण, फिर प्रत्येक द्वीप की सीमा का उल्लेख उनमें पर्वतों, नदियों, जनपदों और भौगोलिक विषयों का यथार्थ उल्लेख यह बताता है कि पुराणों में भूगोल का व्यापक विवरण है। इसी प्रकार प्रकाश के ग्रह नक्षत्र आदि का प्रावधान , उनका भूमि पर पड़ने वाला प्रभाव, ऐसे विषय सभी पुराणों में पाये जाते हैं। जिनसे यह कहने में संकोच नहीं होता कि भूगोल और खगोल सम्बन्धी विवरण सभी पुराणों का अपना ही सम्बन्ध हैं। कम महत्व का नहीं माना जा सकता। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का कहना हैं कि पुराणों में समुपलब्ध भूगोल–खगोल आदि विषयों की सामग्री कोई बहुत अधिक प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।। कल्पना मिश्रित कथाप्रवाह में कथावाचक का ध्यान जिस ओर मुड़ गया उसी विषय को लच्छेदार भाग में उसने यह कह दिया और आगे चलकर वहीं लिपिबद्ध कर दिया गया। यह विवरण यथार्थ ज्ञान के आधार पर हैं। इसमें पूर्व सन्देह हैं। इस प्रकार के सन्देह करने वाले व्यक्ति प्रत्येक विषय के अध्ययन में एक विशेष दृष्टि से काम लेते हैं। जिसे आज विकासवाद शब्द अभिहित किया जाता हैं। इस पक्ष में यान्त्रिक प्रक्रिया पर विश्वास किया जाता हैं। और यह समझा जाता हैं। कि यन्त्रों की सहायता के बिना व्यापक तथ्यों का ज्ञान सम्भव ही नहीं है। निष्कर्ष यही है कि तत्वज्ञान के सम्बन्ध में प्राचीन भारत में व्यापक रूप से प्रचलित मानसिक और यौगिक प्रक्रिया के समक्ष आज के यान्त्रिक साधन अत्यन्त ही क्षद्र स्तर के माने जायेगें । यौगिक साधन सम्पति इन साधनों से कहीं अधिक सम्पन्न और तथ्यों के निकट पहुंचाने वाली थी। उसी प्रकिया से प्राचीन भारतीय मनीषियों को भूगोल खगोल आदि का भी विस्तृत ज्ञान प्राप्त था

पुराणों का राष्ट्रीय एकता का निरूपण– पुराणों में सम्पूर्ण भारत की एकता का सफल प्रयास किया गया है। विष्णुपुराण, भागवतपुराण आदि में भारतवर्ष की महिमा का गान किया गया है जहाँ जन्म लेने के लिएदेवता भी उत्सुक रहते हैं–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्यि भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

अहो अमिषां किमकारी शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।

यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः।।

इस प्रकार भारत में जन्म लेने का महत्त्व दिखाकर पुराणों ने राष्ट्रीय गौरव तथा अस्मिता का निरूपण किया है।सभी प्रदेशों में रहने वाले भारतीयों को एक सांस्कृतिक सूत्र में पुराणों ने युगों से बाँध रखा है। राजनीति की दृष्टि से एक शासन में निबद्ध न रहने वाला भारत सांस्कृतिक और धार्मिक एकबद्धता में अवस्थित है,यह पुराणों का बहुत बडा योगदान है।

तीर्थयात्रा पर पुराणों ने बहुत बल दिया है। ये तीर्थ भारतवर्ष के विभिन्न भागो में अवस्थित हैं। कुछ तीर्थ तो भारत की वर्तमान सीमा के बाहर हैं जैसे– कैलास पर्वत, मानसरोवर इत्यादि। सुदूर दक्षिण के निवासी हिमालय एवं कश्मीर जैसे उत्तरवर्ती क्षेत्रों के तीर्थों की यात्रा अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं तो उत्तर के निवासी कुमारी क्षेत्र (कन्याकुमारी), रामेश्वरम् आदि दक्षिणात्य तीर्थों की यात्रा करना चाहते हैं। भारत की पवित्र नदियों,सरोवरों और पर्वतों की स्थिति पूरे देश में व्याप्त है जहाँ स्नान दर्शन यात्रा की महिमा पुराणों में वर्णित है। इनके प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न करके पुराणों ने सम्पूर्ण भारत के लिए उदार दृष्टिकोण निर्मित करने में पूरी शक्ति लगा दी है।ये पुराण क्षेत्रीयता को राष्ट्रीयता में और संकीर्णता को उदारता में परिणत करते हैं।

भारतीय पुराणों में हिमालय का वर्णन

यह भारतवर्ष के उत्तर में और पूर्व से पश्चिम में पूर्वसमुद्र से कौंच प्रदेश तक और सिन्धु प्रदेश तक फैला हुआ है। हिमालय का वर्णन भारतीय पुराणों में बड़े ही विस्तार एवं मनमोहक ढंग से किया गया है। यह भारत की बड़ी–बड़ी नदियों का उद्गम स्थान है और संसार का सर्वोच्च तथा मनोरम पर्वत है। इस पर्वत के प्रदेश सृष्टि के आदि काल के तथा अन्य प्राचीन घटनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। भगवती के चरित्र में 'हिमवन्तं नगेश्वरम्' का अनेक बार उल्लेख आता है। संस्कृत के अनेक काव्य और महाकाव्य हिमालय के रोचक और मोहक वर्णनों से भरे पड़े हैं। इसकी प्रसिद्धि प्राप्त सैकड़ों चोटियाँ हैं, जिनका वर्णन पृथक्–पृथक् पर्वत के रूप में भी उपलब्ध होता है। कैलास हिमालय की ही एक चोटी है, परन्तु उसे एक अलग पर्वत के रूप में भी अभिहित किया गया है। इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन ने तपस्या की थी, वह भी प्रलकनन्दा नदी के तट पर बदरीनाथ के मार्ग में आने वाले श्रीनगर नामक स्थान के समीप आज भी देखा जा सकता है। मार्कडेय पुराण में जिस स्थान पर महिषासुर के वध का उल्लेख हुआ है वह केदारनाथ के मार्ग में 'मैखण्डा' नाम से आज भी मिलता है इस प्रपभंश नाम में महिष खण्डन या महिष वध की स्पष्ट ध्वनि है केदारनाथ यात्रा के मार्ग से कुछ अलग हटकर एक काली नदी प्रवाहीत है जिसके तट पर महाकाली और महा सरस्वती के मन्दिर विद्यमान है उसके दूसरे पार जो पर्वत है उसकी चोटी का नाम 'कालीशीला' है उस शिला पर शाक्त सम्प्रदाय में प्रचलित सभी यंत्र उत्कीर्ण है। यह बात प्रसिद्ध है कि इस स्थान पर भगवती ने निशुम्भ का वध किया था। इस प्रकार, हिमालय पर्वत भारतीय साहित्य का आधार है। इससे उत्तर की तरफ 'हेमकूट' नाम का पर्वत है और उसके उत्तर में अनेक पर्वतों से आवृत 'निषध' नाम का पर्वत है। उपर्युक्त हेमकूट'श्यामसमुद्र' से फारस तक और 'चीनसमुद्र' से लालसागर तक विस्तृत है।

भारतीय पुराणों में महेन्द्र का वर्णन

'महेन्द्र' पर्वत की पहचान वर्त्तमान उड़ीसा से प्रारम्भ होनेवाली पर्वतमाला से की जा सकती है। दक्षिण के पर्वतों को 'मलय' पर्वत के नाम से प्राचीन साहित्य में व्यवहृत किया गया था। यही कारण है कि उन पर्वतों का पृथक्–पृथक् नाम लेते समय व्यवहार में उनके आगे महेन्द्र मल्लयै, नल्लमल, अन्नमलै, एलामलै आदि नामों से किया जाता है। इस प्रकार, 'महेन्द्र पर्वत' दक्षिण में स्थित सिद्ध होता है।

भारतीय पुराणों में मलय का वर्णन

कुलपर्वतों में मलय नामक पर्वत का भी उल्लेख है। यह अभी कहा गया है कि भारत के दक्षिण के पर्वतों को मलय कहा जाता था, परन्तु मलय नाम का एक पृथक् पर्वत भी था, जिसके लिए यह बात प्रसिद्ध है कि वहाँ चन्दन बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होता था। वहाँ का पवन, चन्दन के गन्ध से सुगन्धित रहता था, जिसे मलयानिल कहा जाता है। आज भी दक्षिण के मैसुर आदि प्रदेशों में चन्दन अधिक मात्रा में पाया जाता है।

भारतीय पुराणों में शक्तिमान् का वर्णन

'शक्तिमान्' पर्वत को वर्त्तमान विद्वान् खानदेश और 'अजन्ता' के समीपस्थ मानते हैं। शक्तिमान में से निकली हुई नदियों में से 'ऋषिका' एक नदी है। इसकी वर्त्तमान पहचान कुछ कठिन हो गई है। महाभारत में भीम द्वारा किए गए पूर्व दिग्विजय के प्रसंग में इसका उल्लेख मिलता है। राजशेखर ने भी इस पर्वत की अवस्थिति पूर्व में ही मानी थी।

भारतीय पुराणों में ऋक्ष का वर्णन

पुराणों में इसका नाम कहीं कहीं ऋक्षवान् भी उल्लिखित है। भालू को ऋक्ष (रीछ) कहते हैं। इस पर्वत पर भालू बहुत अधिक थे, इसलिए इस पर्वत का नाम सम्भवतः ऋक्षपर्वत हो गया। वाल्मिकी रामायण में भी रीछों का पर्याप्त वर्णन है। रीछराज जाम्बवन्त ने भगवान् रामचन्द्र की सहायता की थी। हो सकता है, उसका निवास स्थान ऋक्षपर्वत ही रहा हो। इस कारण उसका नाम ऋक्षपर्वत हो गया हो। वर्त्तमान में यह पर्वत, बघेलखण्ड से आरम्भ करके सुरगुजा, पालामऊ, राँची, सिंहभूमि के पश्चिमी हिस्से, यशपुर आदि प्रदेशों तक में फैला है। पुराणों के वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि इसकी पश्चिमी सीमा 'मेकल' नामक चोटी है जहाँ नर्मदा, सोना और महानदी का उद्मग–स्थान है। इस सम्पूर्ण पर्वतीय भाग में आज भी भालूओं का बाहुल्य है।

भारतीय पुराणों में विन्ध्य का वर्णन

विन्ध्य पर्वत हिमालय की भाँति ही प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध है। वर्त्तमान मिर्जापुर जिले के समीप से यह पर्वतमाला चलती है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में इसका बड़ा ही सजीव वर्णन है। पुराणों में यह वर्णन आता है कि पहले पर्वत भी पक्षियों की भाँति उड़ते थे। विन्ध्य के विषय में भी यह कथा है कि अपनी ऊँचाई की धाक जमाने के लिए यह आकाश में ऊपर की और उठने लगा और इतना ऊँचा उठा कि सूर्य का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। उसी समय उसी मार्ग से अगस्त्य ऋषि (विन्ध्याचल के गुरु) उसके निकट आये। अपने गुरु को आता हुआ देखकर विन्ध्य ने भक्ति भाव से उन्हें पृथ्वी पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। अगस्त्य ऋषि ने उसे यह निर्देश दिया कि मैं दक्षिण की ओर जा रहा हूँ, जबतक उधर से वापस नहीं लौटूँ, तब तक तुम उसी भाँति भूमिष्ठ रहो। आज तक अगस्त्य ऋषि वापस नहीं लौटे और उनकी प्रतीक्षा में विन्ध्याचल आज तक भूमिष्ठ पड़ा हुआ है। इस कथानक का आशय विन्ध्याचल पर्वत की श्रेष्ठता सिद्ध करना ही है। अगस्त्य का वर्णन आगे किया जायेगा, जिससे इस कथानक पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ेगा।

भारतीय पुराणों में पारियात्र का वर्णन

यह पवित्र ब्रह्मवर्त्त के दक्षिण आधुनिक भारत के पशिचिमी भाग में अवस्थित है। और, इसका उल्लेख भी भारतीय साहित्य में र्प्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार, विन्ध्याचल का कुछ भाग तथा वर्त्तमान 'अरावली पर्वत' का ही प्राचीन नाम पारियात्र था, जिसका उत्तरी भाग पंजाब में और दक्षिणी भाग बुन्देलखण्ड होता हुआ नर्मदा के तट तक विस्तृत था। राजस्थान की पहाड़ियाँ भी इसी पारियात्र की श्रृंखला में आती हैं। इन कुल पर्वतों के अतिरिक्त भागवत तथा अन्य पुराणों में कुछ अन्य पर्वतों का उल्लेख हैं। मंगल प्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वैंकट, वारिधारा, ऋक्षगिरि, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभनील, गोकामुख, इन्द्रकील, कामगिरि, वैभ्राज, मन्दुर, दुर्धर (दुर्दर), वातधूम, वैद्युत, सरस, कोलाहल, वैहाल, विपुल, तुंगप्रस्थ, चित्रसानू, उज्जयन्त, पुष्पगिरि, खुर, कृतस्मर, कोकणक, शार आदि के नाम आये हैं। इनमें अनेक नाम एक ही पर्वत के भी सम्भावित हैं। मैनाक का उल्लेख हिमालय के पुत्र रूप में प्राचीन साहित्य में हुआ है। यह इन्द्र के वज्रप्रहार के भय से समुद्र में जाकर छिप गया था, इसीलिए यह समुद्रस्थ पर्वत ही रह गया। समुद्र के भीतर भी पर्वत की स्थिति है। इसका पर्याप्त वर्णन पुराणों में है और इस बात को आधुनिक भूगोलवेत्ता भी स्वीकार करते हैं। त्रिकूट पर्वत वह है, जिसकी तीन चोटियाँ विशाल हैं। श्रीशैल का विवरण भी बौद्धों द्वारा शाक्तवाङ्मय में प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में भी श्रीपर्वत का उल्लेख किया है। बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' में इसके सम्बन्ध में लिखा है कि इस पर्वत के चारों ओर अग्नि ज्वाल के जैसा प्रकाश फैला रहता था। गोवर्धन पर्वत तो व्रज में प्रसिद्ध ही है। दुर्दर की अवस्थिति पूर्व और दक्षिण दोनों दिशाओं में मिलती है। द्रोणपर्वत दक्षिण में प्रसिद्ध है। कोलाहल 'गया' के पास प्रसिद्ध ही है, जिसके ऊपर ही गया नगर की अवस्थिति है। चित्रकूट दण्डकारण्य के पास है वैहार और विपुल की अवस्थिति 'राजगीर' में मानी जाती है। रैवतक द्वारका के समीप है। इन्द्रकील और कामगिरि हिमालय की ही चोटियाँ हैं। इस तरह, पुराणोक्त पर्वतों का अति संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया।

पुराणों में नदियाँ

पुराणों में पर्वतों के पश्चात् नदियों के भौगोलिक विवरण का प्रमुख स्थान है। नदियाँ ही देश की समृद्धि को बढ़ाती हैं। नदियों की स्थिति से हमारे देश को जो लाभ हैं, उनसे तो सभी परिचित हैं। अतः हमारा साहित्य पर्वतों को पिता और नदियों को माता कहकर सम्बोधित करता है। पुराणों में वर्णित नदियों के विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराण निर्माताओं की दृष्टि उन वर्णनों में कितनी यथार्थ और विस्तृत थी। न केवल नदियों के नामों की गणना मात्र इनमें की गई है, अपितु उनका उद्गम स्थान कहाँ है, वह नदी किस प्रदेश में बहती हैं, उसकी सहायिका नदियों का संगम में स्थान कहाँ है, उसका सागर में विलयन कहाँ होता है और उसके तटों पर कौन कौन तीर्थ और नगर अवस्थित हैं इत्यादि विषयों के संकेत भी पुराणों में प्राप्त होते हैं। पुराणों के नदी विषयक ये विवरण कितने यथार्थ हैं, इसका उल्लेख नील नदी के उद्गम के अन्वेषण के सम्बन्ध में हमने पहले प्रस्तुत किया है।

सिन्धु

यह नदी वेदमन्त्रों में भी बहुत विख्यात है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह विवरण आता है कि नदियाँ

सात सात की तीन श्रेणियाँ बनाकर रहती हैं। 'आर्यावर्त्त' में ये नदियाँ सिन्धु नदी के पूर्व में सात, पश्चिम में सात, और उत्तर में सात, इस प्रकार बहती थीं। इन सभी नदियों के बल से भी अतिशय वेग रखने वाला 'सिन्धु' नाम का 'महानद' है। त्रिःसप्त सस्त्रा नद्यः (10।64।8) आदि अन्य वाक्यों में भी इन इक्कीस नदियों का उल्लेख मिलता है।ऋग्वेद के 'नदीसूक्त' में 'सिन्धु' नदी का प्रभावपूर्ण वर्णन है। दूसरी ऋचा का अर्थ है–– ''हे सिन्धो, तुम्हारे जाने के लिए वरुण देव ने अत्यन्त विस्तृत मार्ग बनाया है; क्योंकि तुम अन्नोत्पादन को लक्ष्य करके बह रही हो। भूमि के ऊपर के मार्ग से (पर्वतीय मार्ग से) जाते हो। इतने ऊँचे मार्ग से जाते हुए तुमको सभी प्राणी प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं।'' ''वरुण जल के देवता हैं। सिन्धु का उद्भव पर्वतों से ही हुआ है। शतद्रु और सिन्धु के तट पर तथा उससे दक्षिण में बर्फीले प्रदेश के अभाव से और ताप के अधिक होने से धान्य की उत्पत्ति प्रचुर मात्रा में होती थी।'' इस सूक्त की तीसरी ऋचा में सिन्धु नदी के शब्दायमान होने का वर्णन है। ''सिन्धु की भूमि से ऊपर विद्यमान शब्द आकाश में जाता है। यह सिन्धु अपने अपार वेग को वेगवती तरंगों से ऊपर उठाता हैं। अन्तरिक्ष स्थित बादलों से जैसे वृष्टियाँ गिरती हैं, वैसे ही इससे शब्द प्रादुर्भुत होते हैं। सिन्धु इन शब्दों को बड़े जोरों से उत्पन्न करता है।'' नदियाँ जहाँ पर्वत–प्रदेश से चीने की और बहती हैं, वहाँ उनका शब्द बड़ा दुर्द्धर्ष होता है। इसका अनुभव अधिक दूर नहीं, हरिद्वार या ऋषीकेश में ही हो जाता है। नदियों के निनाद का वर्णन करना बाद में कवियों का सम्प्रदाय हो गया था। कवि मण्डल में जहाँ विभिन्न पशु पक्षी, आभूषण आदि के शब्दों के पृथक्–पृथक् नाम दिये गये हैं, वहाँ नदियों के शब्द को भी 'कलकल' संज्ञा दी गई है। ऋग्वेद का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि वर्णन की यह पद्धति वैदिक छन्दों में भी विद्यमान है। चौथी ऋचा में सिन्धु नदी का इक्कीस नदियों के पुत्र और राजा के रूप में चित्रण किया गया है। उसका अर्थ है––''हे सिन्धो ! जिस प्रकार माताएँ पुत्र को दूध पिलाती हैं, उसी प्रकार ये नदियाँ दूध पिलाने के लिए तुम्हारे पास आती हैं। जिस प्रकार दूध पिलाती हुई गोएं शब्द करती हैं, उसी प्रकार ये नदियाँ भी तुमको जल से पूर्ण करती हुई शब्द करती हैं। साथ ही, युद्ध में प्रवृत्त होने वाले राजा के समान सेना की तरह तुम इन नदियों का निवेश करते हो।क्योंकि, तुम ही इन नदियों के अग्रगामी और सबसे अधिक प्रभावशाली हो।''इस सूक्त की पाँचवीं ऋचा है–

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।

असिक्न्या मरुदृधे वितस्तयार्जीकीये ऋणोह्या सुषोमया।।

इस मंत्र में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, मरुदृधा, आर्जीकीया और सुषोमा–– इन सात नदियों का उल्लेख है। इस मन्त्र की परुष्णी एरावती है तथा असिवनी चन्द्रभागा और वितस्ता झेलम है। इन तीनों को मिलाकर मालव देश में दक्षिणाभिमुख बहने वाली 'मरुदृधा' बनती है। ये नदियाँ जिस प्रदेश में बहती हैं वह 'सप्तसिन्धु' कहलाता है। सप्तसिन्धु का सिन्धु शब्द सिन्धु नदी का वाचक नहीं, अपितु नदी सामान्य का वाचक है। जिस प्रकार इस ऋचा की सात नदियाँ सिन्धु के इस पार 'सप्तसिन्धु–प्रदेश' बनाती हैं, उसी प्रकार सिन्धु के उत्तर पार में स्थित सात नदियों से उस पार का 'सप्तसिन्धु–प्रदेश' बनाता है। उन सात नदियों का नामोल्लेख इस सूक्त की छठी ऋचा में इस प्रकार का है–

त्रिष्टामया प्रथमं यातवे सजूः

सुसर्त्त्वा रसया श्वेत्या त्या।

त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रमु

मेहन्त्वा सरथं याभीरियसे।। (10 ।75 ।6)

इस मन्त्र में 1. त्रिष्टामा 2. सुसर्त्तु 3. रसा, 4. श्वेती, 5. कुभा, 6. कोमती और 7. कमु इन सात नदियों का नामोल्लेख है। ये नदियाँ उसी पूर्वोक्त सिन्धु नदी के पश्चिम में और पूर्व दक्षिण में बहती हुई आज दूसरे नामों से व्यवहार में आती हैं। 'चित्रल' देश के नीचे बहने वाली 'पंचकोर प्रदेश' में स्थित तीन अवयवों वाली (तीन धाराओं में बहने वाली) नदी ही मन्त्र में 'त्रिष्टामा' हो सकती है। 'सुसर्त्तु' 'स्वास्तु' का ही नाम प्रतीत होता है, जिसे आजकल 'स्वात' कहा जाता है। 'रसा का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। यह दूसरी 'रसा' है, जो सिन्धु नदी से सम्बद्ध है। 'श्वेती' वर्त्तमान 'डेरा इस्माइल खाँ' –प्रदेश के तल में बहने वाली 'अर्जुनी' हो सकती है। कुभा, 'काबुल' नदी का नाम है। कमु 'वर्णुप्रदेश' में बहनेवाली 'कुरम' है। गोमती को आजकल 'गोमल' कहा जाता है। ये सातों नदियाँ साक्षात् या परम्परा से सिन्धु नदी से सम्बन्ध अवश्य हैं। इनकी वर्त्तमान स्थिति का जो हमने संकेत किया है, उसे उसी रूप में 'श्रीसत्यव्रतसामश्रमी' ने अपने ऐतरेयालोचन में माना है।

इस नदीसूक्त की सप्तम और अष्टम ऋचाओं में भी सात नदियों का उल्लेख है। ये सात नदियाँ हैं– 1. ऋजीती, 2. एनी, 3. ऊर्णावती, 4. हिरण्मयी, वाजिनीवती और सीलमावती बिलकुल उत्तर दिशा में बहने वाली नदियाँ होती हैं। 'चित्रा' भी चित्रल–प्रदेश से आकर 'कुभा' (काबुल नदी) में मिल जाती है। 'ऋजीती' उसी के समीप बहने वाली प्रतीत होती है। इन ऋचाओं में सिन्धु का बड़ा आकर्षक वर्णन है। नवम ऋचा में भी उसी का चित्रण है। पूर्व और उत्तर सप्तनद प्रदेश को विभाजित करने वाला, हिमालय के मध्य से उद्भूत होनेवाला, पश्चिमवाही, प्राचीन आर्यावर्त्त को दो भागों में विभक्त करने वाला अतिप्रबल सीमादण्ड के समान यह सिन्धु नाम का महानद आज भी विद्यमान है। अश्मन्वती रीयते संरमध्वम् (10 ।153 ।8)। इस मन्त्र में 'अश्मन्वती' नदी का उल्लेख है।यह 'घर्घरा' से पश्चिम, शतद्रु से बहुत पूर्व 'विनशन प्रदेश' में है।

ऋग्वेद (1 ।104 ।1,2,3) में वर्णित 'शिफा' नाम की नदी तो निषधदेश में सम्भव है। आठवें मण्डल (96 ।13 ।14, 15)में 'अंशुमती' नदी का उल्ललेख है। 'सीता' नाम की पर्वतीय नदी का भी कहीं कहीं उल्लेख है। इस वर्णन से सिन्धु को आर्यावर्त्त के मध्य भाग में और मेरुदण्ड मानने पर प्राचीन भारत का अत्यन्त विस्तार भी ज्ञात होता है। आज यह अन्वेषण का महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है।

16,4 सारांश

इस इकाई में पुराणों में सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व के विषय में विशेष रूप से वर्णन किया गया है। पुराणों में भारतीय समाज की व्यवस्था बहुत सुन्दर रूप से चित्रण किया गया है। सुन्दर समाज बनाने की अनेक प्रकार से वर्णित किया गया हैं। सामाजिक जीवन के लिये वर्णाश्रम के गुण कर्म, विविध संस्कार,पारिवारिक सम्बन्ध,राजधर्म, स्त्रीधर्म, गुरु शिष्य के बीच सम्बन्ध इत्यादि के नियम हैं।

पुराण पूरे समाज के लिए पुराण आचार संहिता प्रदान करते हैं। किसी देवता या देवी की उपासना का विधान बताकर उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति पर पुराणों में बल दिया गया है। पुराणों की सर्वोपरि महत्ता आस्तिकवाद के समर्थन के कारण है। उनमें अनेक देवताओं का वर्णन है। सभी देवताओं की समानता की घोषणा करने पर भी एक देवता की महत्ता दिखाना सभी पुराणों का लक्ष्य रहा है। विशेष रूप से ब्रह्म, विष्णु, शिव, गणेश तथा सूर्य की उपासना–पद्धतियों का प्रमाणिक बोध पुराणों से होता है। इन्हीं के

आधार पर परवर्ती कर्मकाण्ड ग्रन्थों का विकाश हुआ है। हिन्दु संस्कृति की सर्वाधिक स्पष्ट रूपरेखा पुराणों में अङि्कत है। सनातन धर्म पुराणों को वेदों से बढ़कर महत्त्व देता है। नारदपुराण में इन्हें वेदों से अधिक प्रामाणिक कहा गया है क्योंकि वेद अपने प्रचार और व्याख्या के लिए पुराणों पर आश्रित हैं

16.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
अष्टादश	अट्ठारह
पुराणेषु	पुराणों में
व्यासस्य	व्यास का
वचनद्वयम्	दो वचन
परोपकारः	परोपकार
पुण्याय	पुण्य के लिये
पापाय	पाप के लिये
परपीडनम्	दूसरें की पीड़ा के लिये
गायन्ति	गाते हैं
देवाः	देवता लोग
गीतकानि	गीतों को
धन्यास्तु	धन्य हो
ते	वे लोग
भारतभूमिभागे	भारत के भू भाग में
स्वर्गाः	स्वर्ग
अपवर्गाः	मोक्ष
भूयः	होवें
पुरुषाः	पुरुष

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न – उतर

1) प्रश्न– विष्णु के विविध अवतारों का वर्णन किसमें है

   उत्तर–पुराण में

2) प्रश्न– शिव और उनके परिवार की विभिन्न कथाएँ किसमें वर्णित हैं

   उत्तर–पुराण में

3) प्रश्न– पुराण पूरे समाज के लिए प्रदान करते हैं

   उत्तर– आचार संहिता

4) प्रश्न–पुराणों के ज्ञान के माध्यम से किसका उत्थान हुआ।

उत्तर– सामाज का

5) प्रश्न– सामाजिक जीवन के लिये किसका ज्ञान आवश्यक है

उत्तर– पुराणों का

16.6 वहुविकल्पीय प्रश्न–उत्तर

1) प्रश्न– आस्तिकवाद के समर्थन में कारण है

1 व्याकरण 2 दर्शन

3 ज्योतिष 4 पुराण (4)

2) प्रश्न– देवताओं का वर्णन है।

1 व्याकरण 2 दर्शन

3 ज्योतिष 4 पुराण (4)

3) प्रश्न–हिन्दु संस्कृति की सर्वाधिक स्पष्ट रूपरेखा किसमें अङ्कित है

1 आगम 2 व्याकरण

3 भूमण्डल 4 पुराण (4)

4) प्रश्न–विष्णुपुराण में किसको प्रधान कहा गया है।

1 शिव 2 हनुमान

3 विष्णु 4 गणेश (3)

5) प्रश्न–शैवपुराण में परमात्मा को कहा गया है

1 शिव 2 हनुमान

3 विष्णु 4 गणेश (1)

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1) पुस्तक का नाम–संस्कृत साहित्य का इतिहास

प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी

लेखक का नाम– उमाशंकर शर्मा ऋषि

सम्पादक का नाम–उमाशंकर शर्मा ऋषि

प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी

3) पुस्तक का नाम– श्रीमद् महापुराण

प्रकाशक का नाम– गीताप्रेस गोरखपुर

4) पुस्तक का नाम– वैदिक साहित्य

लेखक का नाम– कपिलदेव द्विवेदी

प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

16.9 उपयोगी पुस्तकें

1) पुस्तक का नाम–संस्कृत साहित्य का इतिहास
   लेखक का नाम– उमाशंकर शर्मा ऋषि
   सम्पादक का नाम–उमाशंकर शर्मा ऋषि
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी
2) पुस्तक का नाम– वैदिक साहित्य
   लेखक का नाम– कपिलदेव द्विवेदी
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
3) पुस्तक का नाम– श्रीमद् महापुराण
   प्रकाशक का नाम– गीताप्रेस, गोरखपुर।

16.10 निबधात्मक प्रश्न

1) पुराणों के सामाजिक महत्त्व का वर्णन कीजिये।

इकाई 17 श्रीमद् भागवत्, अग्नि, विष्णु, गरूण एवं मत्स्य पुराणों का सामान्य परिचय

इकाई की रुप रेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 श्रीमद् भागवत् .अग्नि. विष्णु .गरूण एवं मत्स्य पुराणों का सामान्य परिचय

17.4 सारांश

17.5 शब्दावली

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न उतर

17.7 बहुविकल्पीय प्रश्न

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.9 उपयोगी पुस्तकें

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

श्रीमद् भागवत महापुराण से सम्बन्धित यह 17 वीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि श्रीमद् भागवत महापुराण की आवश्यकता किस प्रकार से हुई? पुराणों में सर्वाधिक प्रचलित कृति भागवतपुराण ही है। इसका पारायण विष्णु के भक्तों के द्वारा किया जाता है। इस पर संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ हैं। इसमें भक्तिरस होने के कारण इसे अनुपम प्रसिद्धि प्राप्त हुआ है। श्रीमद् भागवत महापुराण की भाषा शैली अत्यधिक परिष्कृत लालित्यपूर्ण कवित्वम एवं प्रौढ है विद्वान् ब्राह्मणों के घर में वेद या अन्य पुराण भले ही ना मिलें, भागवत महापुराण अवश्य मिलेगा। अपने विचारों और भावों को सुन्दर सुगठित सुबोध एवं क्रमबद्ध भाषा में श्रीमद् भागवत महापुराण का वर्णन किया गया है। भाषा व्याकरण की दृष्टि से श्रीमद् भागवत महापुराण अत्यन्त सरल एवं परिमार्जित है इनमें धर्म के साथ सभी शास्त्रों का वर्णन किया गया है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् श्रीमद् भागवत्श अग्नि, विष्णु, गरूण एवं मत्स्य पुराणों का सामान्य परिचय के विषय में अध्ययन करेंगे।

- श्रीमद् भागवत महा पुराण के विषय में आप परिचित होंगे—
- कृष्ण को ही ब्रह्म कहा गया है इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- अग्निपुराण के विषय में आप परिचित होंगे।
- विष्णु पुराण के विषय में आप परिचित होंगे।

- गरूण पुराण के विषय में आप परिचित होंगे।

17.3 श्रीमद् भागवत्, अग्नि, विष्णु, गरूण एवं मत्स्य पुराणों का सामान्य परिचय–

भागवतपुराण– पुराण साहित्य में सर्वाधिक प्रचलित कृति भागवतपुराण ही है। इसका परायण विष्णुभक्तों के द्वारा किया जाता है, इस पर अनेक संस्कृत व्याख्याएँ हुई हैं तथा अनेक भाषाओं में इसके रूपान्तर हैं। रामायण के समान इसका व्यापक समाचार है। भक्तिरस का आधार ग्रन्थ और धर्म का रसमय स्वरूप होने के कारण इसे अनुपम प्रसिद्धि प्राप्त है अन्य पूराणों की अपेक्षा इसकी भाषा शैली अत्यधिक परिष्कृत, लालित्यपूर्ण, कवित्वमम एवं प्रौढ है। शिक्षित ब्राह्मणों के घर में वेद या अन्य पुराण भले ही ना मिलें, भागवतपुराण अवश्य मिलेगा। विभिन्न अवसरों पर किसी फल के उद्देश्य से इस पुराण का सप्ताह वाचन पारायण होता है। इसे सभी दर्शनों का सार (निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्) तथा विद्वानों का परीक्षा स्थल कहा गया है(विद्यावतां भागवते परीक्षा)। यहाँ कृष्ण को ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् बताया गया है।

इस पुराण का विभाजन 12स्कन्धों में हुआ है। पूरे ग्रन्थ में 35 अध्याय तथा अठारह सहस्र श्लोक हैं। प्रथम स्कन्द में इस पुराण की उत्पत्ति की कथा विस्तृत रूप से दी गयी है कि परीक्षित् को शुकदेव जी ने सुनायी थी, बाद में इसे नैमिषारण्य में सूत ने ऋषि–मण्डली के समक्ष सुनाया। द्वितीयस्कन्ध में विराट् पुरुष, देवताओं की सकामोपासना, सृष्टिक्रम तथा भागवत के दस लक्षणों का वर्णन है।तृतीयस्कन्ध में उद्भव का विधुर को कृष्णलीलाओं का वर्णन सुनाना, मैत्रेय का विदुर को सृष्टिक्रम सुनाना, वराहावतार की कथा, हिरण्याक्ष वध, कपिल का जन्म और सांख्य दर्शन की उत्पत्ति आदि विषय हैं। चतुर्थ स्कन्ध में स्वायंभू मनु की कन्याओं की वंश परम्परा, दक्ष और शिव की कथा; ध्रुव, राजा वेन, राजा पृथु तथा पुरञ्जन के आख्यान एवं दस प्रचेताओं के वृत्त वर्णित हैं। पञ्चमस्कन्ध में गद्य का भी प्रयोग है जिसमें प्रियव्रत आदि राजाओं के वृत्तान्त के अतिरिक्त भूगोल वर्णन है। षष्ठस्कन्ध में अजामिल, दक्ष तथा उनकी सन्तति, विश्वरूप तथा वृत्रासुर का वध एवं दिति अदिति की कथाएँ मुख्य रूप से आ गई हैं। सप्तमस्कन्ध में प्रहलाद की कथा दस अध्यायों में वर्णित है, शेष भाग में वर्णाश्रम धर्म का विवेचन है। अष्टमस्कन्ध में विभिन्न मन्वन्तरों की कथाएँ, गजेन्द्र मोक्ष, समुद्र मन्धन, बलि वामन कथा एवं मत्स्यावतार वर्णित हैं। नवमस्कन्ध में सूर्य तथा चन्द्र वंशों के राजाओं का वर्णन, भरतवंश वर्णन एवं पांचाल मगध आदि के राजाओं का वर्णन हैं। इस प्रसंग में हरिशचन्द्र, राम, परशुराम, दुष्यन्त आदि की कथाएँ मुख्य हैं।

दशम स्कन्ध इस पुराण का बृहत्तम भाग (90 अध्याय) है।सर्वाधिक लोकप्रिय भी यही भाग है। इसमें कृष्णजन्म से लेकर उनकी पूरी जीवन कथा है, लीलाओं का वर्णन है। एकादश स्कन्ध में यादवों के विनाश का तथा कृष्ण उद्भव संवाद के अनेक धार्मिक दार्शनिक विषयों का वर्णन है। अन्त में कृष्ण का स्वलीला संवरण (मृत्यु) वर्णित है। द्वादश स्कन्ध में कलियुग के राजाओं तथा इस युग के धर्म का वर्णन करके वेदों और पुराणों का विभाजन, भागवत पुराण की विषय वस्तु तथा अन्य पुराणों के श्लोकों की संख्या निर्दिष्ट है। कुछ विद्वान् 'भागवत' में से 'देवीभागवत' पुराण का ग्रहण करते हैं (भगवत्या इदं भागवतम्)। इसमें देवी या शक्ति की महिमा वर्णित है। इसमें भी बारह स्कन्ध तथा 18 सहस्र श्लोक हैं।अध्यायों की संख्या केवल 318 है। भागवत जहाँ दर्शनपरक है, वहाँ देवी भागवत तन्त्रानुसारी है। भागवत का रचनाकाल जहाँ छठी शताब्दी ई से 10 वी. शताब्दी ई० तक माना गया है, वहाँ देवीभागवत के वर्तमान रूप

को 9 वीं से 11वीं शताब्दी ई०तक माना गया है कि प्रथम शताब्दी ई० से ही तन्त्र का व्यापक प्रचार होने लगा था, 'राधा' की पूजा इसी का परिणाम थी। भागवत में तो राधा की चर्चा नहीं है किन्तु इस देवीभागवत की देवियों में वे अन्यतम हैं। इसमें मङ्गला देवी, षष्ठी देवी तथा मनसा देवी की कथाएं मुख्य रूप से वर्णित हैं।इसके मूल रूप में परिवर्तन, बंगाल में किया था।

अग्निपुराण– अग्नि के द्वारा वशिष्ठ को उपदेश इसमें दिये जाने के कारण इसे अग्निपुराण कहा जाता है।यह भारतीय संस्कृति तथा विद्याओं का महाकोष है जिसमें भारतीय वाङ्मय के उत्कृष्ट ग्रन्थों और विषयों का रोचक सार संकलन है। पुराणों में दिये गये विवरणों के अनुसार तो इसमें पन्द्रह सहस्र चार सौ श्लोक थे किन्तु वर्तमान अग्निपुराण में 383 अध्याय तथा प्राय साढ़े ग्यारह सहस्र श्लोक हैं! इसमें विष्णु के अवतारों का वर्णन है। राम कृष्ण के वर्णन में यह रामायण, महाभारत तथा हरिवंश का अनुसरण करता है। प्रारम्भ में वैष्णव ग्रन्थ का स्वरूप लेने पर भी यह प्राधानतः शैव धर्म का ग्रन्थ है जिसमें शिवलिङ्ग, दुर्गा, गणेश, सूर्य आदि की रहस्यात्मक पूजा पद्धतियों का वर्णन है। देव प्रतिमाओं के निर्माण और उनकी प्राण प्रतिष्ठा की विधियाँ भी यहाँ वर्णित हैं। पुराणों के लक्षण विषयों के अतिरिक्त इसमें भूगोल, गणित और फलित ज्योतिष, विवाह और मृत्यु की धार्मिक क्रियाएँ, शकुनविद्या, वास्तुविद्या, दिनचर्या, नीतिशास्त्र, युद्धविद्या, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, छन्द, काव्य, व्याकरण, कोश निर्माण आदि नाना विषयों पर प्रकाश डाला गया है। विश्वकोषात्मकता इस पुराण की विशिष्टता है।

विष्णुपुराण–अन्य पुराणों की अपेक्षा इस पुराण में मौलिक सामग्री अधिक विश्वसनीयता पूर्वक सुरक्षित है। 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' के प्राचीन स्वरूप की इसमें रक्षा की गयी है। रामानुज (1017–1137 ई०) ने इसे प्रमाण ग्रन्थ के रूप में उद्धृत किया है। इसमें विष्णु को परम देवता के रूप में निरूपित किया गया है।यह पुराण छह खण्डों में विभक्त है, अध्यायों की संख्या 156 है यद्यपि पुराणों में इसकी श्लोक संख्या 23 या 24 सहस्र कही गयी है किन्तु इसके मुद्रित संस्कारों में प्रायः 6000 श्लोक मिलते हैं। इसके प्रवक्ता पराशर तथा श्रोता मैत्रेय कहे गये हैं। इसमें अवतारों के वर्णनों के द्वारा विष्णु की स्तुति है किन्तु विष्णुभक्तों के द्वारा किये गये व्रतों या उपवासों का, वैष्णव उत्सवों तथा मन्दिरों का कोई वर्णन नहीं है। इसके **प्रथम भाग** सृष्टि (अंश)में सृष्टि का वर्णन, देव, राक्षस, मनु आदि की उत्पत्ति और समुद्र मन्थन के विवरण के अनन्तर महान् विष्णुभक्त ध्रुव तथा प्रह्लाद के चरित वर्णित हैं। **द्वितीय अंश** में पृथ्वी, नरक,सूर्य तथा ग्रहों का वर्णन है। इस प्रसंग में भारतवर्ष का, राजा भरत तथा विष्णु भक्ति की दृष्टि से सर्वात्म दर्शन का भी विवरण है।**तृतीय अंश** में मनुओं तथा मन्वन्तरों, व्यास द्वारा वेदों के विभाजन, वेदशाखाओं, वर्णाश्रमों, जन्म और विवाह संस्कारों के वर्णन के अनन्तर जैन बौद्ध आदि नास्तिकों के उद्‌भव की कथाएँ दी गई हैं। **चतुर्थ अंश** में, वायु–पुराण से मिलती–जुलती सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं की सूची दी गई है। इसमें उर्वशी,ययाति, राम तथा महाभारत की कथाएँ भी हैं। अन्त में मगध, शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग आदि वंशो के राजाओं का वर्णन करके कलियुग के बर्बर राजाओं के अनीतिपूर्वक शासन का विनाश करने के लिए कल्कि–अवतार की भविष्यवाणी है। **पञ्चम अंश** में हरिवंशानुसार कृष्ण कथा तथा **षष्ठ अंश** में चारों युगों का वर्णन करके बन्धन मोक्ष का वैष्णव दर्शन के अनुसार विवेचन है।

विष्णु पुराण के द्वितीय अध्याय में विष्णु की विशेषता के सम्बद्ध कुछ ऐसे है जिसको पाठकों तक पहुचाना अत्यन्त आवश्यक है। जिसकी पहली विशेषता यह है कि वहाँ ग्रन्थ के आरम्भ में ही प्रथम प्रकृति, महत्तत्त्व , अहंकार आदि का विवरण किया गया है। मनु भगवान् ने मण्डल सृष्टि के कथन के पश्चात् महत्तत्त्व आदि का वर्णन लिखा है; क्योंकि उन्हें महत्तत्त्व, अहंकार आदि का केवल आध्यात्मिक रूप में वर्णप लिखना

था। अहंकार से उत्पन्न होने वाली इन्द्रियों के संयोग से भी मनुष्य शरीर बनता है और इन्द्रिय, मन, शरीर आदि के द्वारा ही धर्माधर्म कर्म होते हैं। इसीलिए, मनुस्मृति में इन्द्रिय आदि का आध्यात्मिक रूप वर्णित हैं। क्योंकि उनका मुख्य प्रतिपापाद्य विषय धर्माधर्म था। अन्य सृष्टि के विषय में मनु ने गौण रूप से और संक्षेप में लिखा है। किन्तु, 'विष्णुपुराण' का मुख्य विषय सृष्टि निरूपण ही है, अतः भगवान् व्यास ने यहा सम्पूर्ण प्रपंच के कारण प्रकृति को आधिदैविक रूप में किया गया हैं।

मनुस्मृति में सूर्यमण्डलाधिष्ठातता प्राणशक्ति को ही ब्रह्मा नाम भिन्न–भिन्न तत्वों में प्रवृत हुआ है, जिसे नारायण भी कहा गया हैं। किन्तु, विष्णुपुराण की यह तीसरी विशेषता है कि महतत्व से पृथ्वी तक की उत्पत्ति में बतलाया हैं। तत्वों के पृथक्–पृथक् रहने पर सृष्टि–विकास में उन्हें असमर्थ जानकर कहता है कि सबके सम्मिलित योग ने एक अण्ड उत्पन्न किया तथा उसी अण्ड से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। यहाँ महतत्व से आरम्भ कर पृथ्वी तक के तत्वों ने जिस अण्ड का सर्जन किया वह ही ब्रम्हाण्ड है। श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड का विराट् पुरुष के रूप में भी वर्णन किया गया हैं। सभी तत्व उस विराट् के भिन्न–भिन्न अवयव बताये गये हैं। जैसे द्युलोक उसका मस्तक है, सूर्य चन्द्रमा नेत्र हैं, पृथ्वी कटि प्रदेरूा है इत्यादि। इस अण्ड को अपना शरीर मानकर जो चेतन शक्ति सब में व्याप्त रूप से प्रकट होती है , वही ब्रह्मा है। इसे ही हम अपनी वैज्ञानिक प्रकिया में 'क्षरपुरुष' कहते हैं। सभी ब्रह्माण्ड क्षरपुरुष से उत्पन्न होते हैं और उसी के अवयव रूप में स्थित रहते है। भागवत में जिस विराट् पुरुष का वर्णन लिखा है वह भी क्षरपुरुष का ही पुरुष वर्णन हैं। इसी रहस्य को लक्ष्य में रखकर, त्रिपुरुषों के निरूपण में , भगवद्गीता कहती हैं क्षरः सर्वाणी भूतानि, अर्थात् सर्वभूतमय क्षर पुरुष है।

विष्णुपुराण के अनुसार सृष्टि–

'विष्णपुराण' के द्वितीय अध्याय में सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन हैं। तदनन्तर, निर्विकार परमात्मा से सृष्टि कैसे उत्पन्न हो गई, इस शंका के निवारणार्थ तृतीय अध्याय में शक्ति का स्वरूप बतलाया गया है। इसी प्रसंग में ब्रह्म की आयु बतलाने के लिए काल विभागों का भी वहाँ निरूपण है। आगे चतुर्थ अध्याय में वराह–अवतार का वर्णन, पञ्चम अध्याय में फिर सृष्टि का विस्तार, जिसमें ब्रह्म की आयु आदि का भी विवरण हैं, और पञ्चम अध्याय में ही प्राणियों के सृष्टि–कथन से पहले ही अविद्या की सृष्टि बतलाई गई हैं। सृष्टि–प्रक्रिया में 'विष्णुपुराण' के अनुसार जगत् के मूल तत्त्व दो हैं––रस और बल । इन दो तत्त्वों का नाम 'रस' और 'बल' क्यों हुआ ? पृथक् सत्ता न रखने के कारण ये दोनों भिन्न नहीं, अपितु एक ही हैं। बल की ही अवस्थाओं को शक्ति और क्रिया कहा जाता हैं, इन सबका पूर्ण विवरण 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' (पृ० 78) में किया गया हैं। नामरूप रहित मूलतत्त्व 'रस' के ही ये तीन नाम प्रसिद्ध हैं, जिन्हें हम सत्, चित् और आनन्द कहते हैं। चित् को बताने वाले ज्ञान और विद्या नामक शब्द भी हैं। शक्ति शब्द से व्यवहृत होनेवाला 'बल' ज्ञान या विद्या का आवरणकर्त्ता हैं और दोनों का विरुद्धधर्मा भी हैं इसलिए 'बल' का अविद्या नाम भी प्राप्त है। अविद्या शब्द से मायाशक्ति ही जानी जाती है, जिसका विवरण वेदान्त दर्शन में स्पष्ट है।

अस्तु, उपर्युक्त माया या अविद्या व्यापक मूलतत्त्व को परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) रूप में दिखाती हैं। और मूलतत्त्व जब सीमाबद्ध हो जाता है, तब उसमें चार धर्म और प्रकट हो जाते हैं। अतः, 'अविद्या' को पञ्चपर्वा (पाँच पर्ववाली) कहा गया है। यहाँ सीमाबद्ध मूल तत्त्व के चार धर्मों को समझने के लिए यह जानना आवश्यक हैं कि मूल तत्त्व जब

सीमाबद्ध हो जाता है, तब उसका एक आकार बन जाता है। अतः, उसमें अस्मिता अथवा 'अहंकार' भी उत्पन्न हो जाता है–– अर्थात्, 'मैं हूँ' ऐसा वह मानने लगता हैं। साथ ही, एक पृथक् सत्ता हो जाने पर अपने से भिन्न पदार्थों के साथ उसकी अनुकूलता या प्रतिकूलता भी हो जाती हैं। इसका तात्पर्य है कि वह किसी भी दूसरे तत्त्व को अपना अनुगामी (अनूकूल) और किसी को अपना प्रतिगामी (प्रतिकूल) मानने लगता हैं। इसी अनुकूलता या प्रतिकूलता का नाम राग और द्वेष हैं। साथ ही, जितनी सीमा जिस तत्त्व की बँधी होती हैं, उस सीमा पर उसका आग्रह रहता हैं कि मेरी यह सीमा घटने न पाये।इसे ही शास्त्रों में अभिनिवेश कहते हैं। इस प्रकार,1 अविद्या, 2 अस्मिता, 3 राग, 4 द्वेष और 5 अभिनिवेश अपने इन पाँच रूपों के कारण 'अविद्या' पञ्चपर्वा कहलाती है और यह पाँच रूपों वाली अविद्या ही जगत् का मूल कारण होती हैं। यद्यपि इन नामों का व्यवहार चैतन्य प्राणियों में ही होता है,तथापि व्यापक दृष्टि से विचार करने पर अविद्या का रूप जड़ चेतन सब में व्यापक दिखाई देता है।सांख्यशास्त्र के अनुसार शक्ति अर्थात्, प्रकृति का पहला परिणाम महत्तत्त्व या बुद्धि है। प्रकृति में तीन गुण हैं– सत्त्व, रजस और तम। इन तीनों गुणों के समन्वय को ही प्रकृति कहा जाता हैं। इनमें मध्य का रजोगुण, सत्त्व और तम को क्रियाशील बनाकर उन्हें परिणामशील बना देने वाला होता हैं, अतः रजस का पृथक् परिणाम नहीं गिना जाता है। शेष दो गुणों (सत्त्व और तम में) सत्त्व के परिणाम चार हैं––1अधर्म, 2 अज्ञान, 3 अवैराग्य और 4 अनैश्वर्य। इनमें 'अवैराग्य', 'राग' और 'द्वेष' इन दो नामों से अभिहित होता हैं, अतः सत्त्व के परिणाम पाँच हो जाते हैं। यहीं पाँच रूप अविद्या के बताये गये हैं। जगत् का निर्माण करने के लिए इनमें सात्त्विक चार रूपों में ईश्वर भी स्वीकार करता हैं; किन्तु ईश्वर में तमोगुण के चार रूपों का स्पर्श भी नहीं होता। ये केवल जीवों में ही समाविष्ट होते हैं। शास्त्रों में पाँच क्लेशों के नाम से इनकी ही गणना हुई है। ये सात्त्विक रूपों के विराधी हैं। ज्ञान या विद्या का विरोधी अज्ञान या अविद्या हैं। ऐश्वर्य या ईश्वरभाव का विरोधी अस्मिता हैं। परिच्छिन्नया सीमाबद्ध हो जाने पर जो लघुता आ जाती हैं। वहीं ईश्वरभाव की विरोधिनी कहलाती हैं। व्यापक पदार्थ ही पूर्ण सामर्थवान् होता है, अतः लघुता आ जाने से वह सामर्थ्य नहीं रखता। जो जितना छोटा होता जायेगा, उतना ही उसका सामर्थ्य न्यून होता जायेगा। समर्थ ही ईश्वर शब्द का अर्थ है, इसलिए 'अस्मिता' का ईश्वर भाव का विरोधी होना स्पष्ट है। वैराग्य के विरोधी 'राग' और 'द्वेष' तो प्रसिद्ध हैं ही। पाँचवाँ 'अभिनिवेश' या आग्रह धर्म का विरोधी हैं। धर्माचरण करने वाले को किसी बात पर आग्रह नहीं होता। वह शास्त्र या गुरुजनों के वाक्यानुसार जिस काम को उचित समझता हैं। उसी में लगता हैं। इसलिए, 'आग्रह' का धर्मविरोधी होना सिद्ध होता हैं। कई ग्रन्थों में प्रत्येक प्राणी में स्वाभाविक मृत्यु के रहने वाले भय को 'अभिनिवेश' बतलाया गया हैं। व्यापक दृष्टि से जड़ चेतन सब में इसका अस्तित्व रहता हैं। जिस पर हमने पहले ही विचार किया हैं और कहा है कि अपनी सीमा को न्यून होने देना कोई नहीं चाहता। जड़ पदार्थो की भी एक सीमा होती है। उस सीमा के बिगड़ जाने पर वह स्वरूप नहीं रह जाता। स्वरूप ही धर्म है, इस विचार से भी अभिनिवेश का धर्मविरोधी होना सिद्ध है। आत्मा में ज्ञानजनित संस्कार रूप भावना और कर्म जनित संस्कार रूप वासना रहती है और ये आत्मा को सदा आच्छन्न किये रहती हैं। कई विद्वान् इन्हीं को 'अभिनिवेश' कहते हैं। इन्हें हटाकर अपनी स्वतन्त्रता प्रकट करना आत्मा का मुख्य धर्म है। इस प्रकार भी धर्म का अभिनिवेश से विरुद्ध होना सिद्ध हैं।

सांख्यशास्त्र में बुद्धितत्त्व को ही सम्पूर्ण जगत् का कारण माना गया हैं। इसलिए, उसके धर्मो की व्यापकता अथवा जड़ चेतन साधारणता मानना युक्ति युक्त है। यद्यपि अविद्या ईश्वर की शक्ति होने के कारण नित्य कही जाती है; तथापि परिणामी नित्य है, अतः इसका अव्यक्त और व्यक्त रूप में रहना स्वाभाविक हैं। प्रलयकाल में इसका

अव्यक्त रूप और सृष्टिकाल में व्यक्त रूप रहता हैं। इसी अभिप्राय से 'विष्णुपुराण' में भगवान् विष्णु या परब्रह्म से इसका प्रादुर्भूत होना बतलाया गया हैं। यही अविद्या प्राणियों में अन्तःकरण रूप से स्थित रहती हैं। और इसी के प्रतिरूप धर्म, काम, क्रोध आदि हैं। इसीलिए यह 'ब्रह्मपुराण' में रोष, क्रोध आदि नामों से संकेतित है। यहीं संसार का मूल हैं। इसके अभाव में संसार चल नहीं सकता। इसी अभिप्राय से प्रथम प्रथम इसी का उत्पादन कहा गया हैं। कई पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता हैं कि ब्रह्म ने सर्वप्रथम 'सनकादि' ऋषियों को उत्पन्न किया और कहा कि आप लोग सृष्टि करें। किन्तु ऋषियों ने सृष्टिकार्य करने को बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। तब अपने पुत्रों की अस्वीकृति से ब्रह्म को क्रोध हुआ और उसी क्रोध से पूर्वकथित पाँच प्रकार की 'अविद्या' उत्पन्न हुई, जिससे ग्रस्त होकर बाद की उत्पन्न प्रजाएँ सांसारिक प्रपञ्च (सृष्टि) करने में लगीं। यह कथा सिद्ध करती हैं कि सृष्टि के पूर्व अविद्या का प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिए, कथन की प्रक्रिया का भेद है, अभिप्राय एक ही है। इस अविद्या के रूपों का व्यवहार विशेषकर चेतन प्राणियों में देखा जाता है और प्राणिवर्ग (जीव) ही अविद्यावश संसार में फँसता हैं। इसीलिए, 'विष्णुपुराण' में प्राणियों के सृष्टि कथन के पूर्व ही पाँच प्रकार की अविद्या का विवरण दिया गया हैं।

अविद्या सृष्टि को अबृद्धि पूर्वक कहा गया है। इसके मानी है कि इसका पूर्ण संगठन हो जाने पर बुद्धि नाम का तत्त्व पूर्ण होता है और तत्पश्चात् होने वाली सृष्टि बुद्धिपूर्वक कहीं जाती है; क्योंकि, बुद्धि के बाद जो सृष्टि हुई, वह बुद्धि की सहायता से बनी। किन्तु, बुद्धि के स्वरूप संगठन के पूर्व जो सृष्टि है, वह अबुद्धिपूर्वक ही कही जायगी।

सृष्टि में विकासवाद

'विष्णुपुराण' में प्राणियों के सृष्टि प्रसंग में किया गया है कि पहले 'नग' (वृक्षादी) उत्पन्न हुए। ये मुख (प्रारम्भ) में उत्पन्न हुए थे, इसीलिए इन्हें मुख्य कहा जाता है। इसके आगे 'तिर्यग्योनी', अर्थात् मनुष्य से नीचे दरजे के प्राणियों की सृष्टि ब्रह्म ने की। तिर्यग्योनी के चार भेद हैं–– 1 पशु, 2 मृग, 3 पक्षी, और 4 सरीसृप (रेंगने वाले सर्प, वृश्चिक आदि जन्तु)।

आजकल पाश्चात्य वैज्ञानिक भी विकासवाद की दृष्टि से सृष्टि का कम मानते हैं। जिनके दो भेद हैं

1) प्राणियों की दृष्टि में क्रमिक विकास और

2) प्राणियों की सृष्टि में क्रमिक विकास।

इनमें प्रथम का पुराण सम्मत विवरण 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' (पृ० 20) में विस्तार से दिया गया है। सृष्टि विकास के दूसरे भेद के अनुसार यदि क्रमशः सरीसृप, मृग, पशु, पक्षी आदि रूप विकास का माना जाय, तो वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी पूर्ण अनुकूलता प्रमाणित होती हैं। पृथ्वी तत्त्व से बनने के कारण आरम्भ में उत्पन्न प्राणियों में पृथ्वी का आकर्षण प्रबल रहता है;क्योंकि सजातियाकर्षण सिद्धान्त के अनुसार उन पर पृथ्वी का आकर्षण प्रबल विज्ञानसिद्ध है। पृथ्वी पर सूर्याग्नि का निरन्तर आगमन होता रहता है। वह पार्थिव पदार्थो को अपने आकर्षण से ऊपर उठना चाहता हैं।

विष्णु पुराण में ऋषि निरूपण

गुरुवर श्रीविद्या वाचस्पति जी ने 'महर्षिकुलवैभव' नामक ग्रन्थ में ऋषि शब्द के चार अर्थ बतलाये हैं–

1) जगत् की पूर्णावस्था में जो विद्यमान थे, उनके सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण के छठे काण्ड के आरम्भ में ही विस्तार से कहा गया है। वे ही ऋषि प्राणियों में अध्यात्म–रूप से प्रविष्ट होते हैं –

प्राणो वै वसिष्ठऋषिः, मनो वै भरद्वाजऋषिः (शत ० 8 |1 |1 |6) चक्षुर्वै जमदग्निऋषिः (शत ० 8 |1 |2 |3)

इस तरह, शरीर के चारों भागों में ये ऋषि सात सात भागों में विभक्त होकर रहा करते हैं। ये ही ऋषि आगे उत्पन्न होने वाले जगत् के मूल तत्त्व हैं। विशुद्ध प्राण, अर्थात् दो तत्त्वों का सम्मिश्रण जहाँ न हो, ऋषि नाम के प्राण कहे जाते हैं। मिश्रण से जो प्राण बनते हैं, वे देव नाम के प्राण कहे जाते हैं। ये ऋषि, देव, पितृ आदि सूक्ष्म जगत् के तत्त्व हैं, यह बात कही जा चुकी है।

2) दूसरे प्रकार के ऋषि 'तारामण्डल' में स्थित हैं। उत्तर दिशा में ध्रुव की परिक्रमा करते हुए जो सात बड़े तारे दिखाई पड़ते हैं और तीन नीचे लटकते हुए त्रिकोण के रूप में देखे जाते हैं, 'सप्तर्षि' कहलाते हैं।

इनके नाम ऋषियों के नाम पर हैं और 'बृहत्संहिता' के अनुसार––

पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात् ।

तस्याङ्गिरस्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ।।

पुलहः ऋतुरिति भगवानासन्नानुक्रमेण पूर्वाद्याः।

अत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी।।

(बृहत्संहिता, अ० 13)

इस सप्तर्षि मण्डल में सबसे नीचे की और जो पूर्व तरफ झुका हुआ तारा दिखाई देता है, वह मरिची नाम का ऋषि है। उसके ऊपर त्रिकोण के मध्य में तारा वसिष्ठ हैं। उस वसिष्ठ के समीप ही एक छोटे तारे के रूप में पतिव्रता अरुन्धती विराजमान है। इस अरुन्धती का दर्शन विवाह के समय वधू को कराना चाहिए, ऐसा विधान कल्पसूत्रों में है। उसके ऊपर के भाग में अङ्गिरा नाम का ऋषि है। आगे चतुष्कोण बनाये हुए जो चार तारे हैं, वे पश्चिम से आरम्भ कर अत्रि, पुलत्स्य, पुलह और ऋतु नाम के चार ऋषि हैं। ये सातों ऋषियों के नाम विष्णुपुराणोक्त ऋषि नामों में आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त तारामण्डल में अन्य तारे भी ऋषि–नाम से विख्यात हैं, जिनका विवरण 'वैदिक विज्ञान भारतीय संस्कृति' (पृ० 135) में दिया गया है।

3) तीसरे वे ऋषि कहे जाते हैं, जिन्होंने ईश्वरानुग्रह से ये विद्याएँ प्राप्त कीं और उन्हें वेदमन्त्रों के रूप में हम लोगों को दिया। वेदकर्त्तृत्व के सम्बन्ध में तीन प्रकार के प्रधान मत शिष्ट–सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। इन ऋषियों के भी तीन भेद हैं–

क सृष्टिप्रवर्त्तक,

ख मन्त्रद्रष्टा और मन्त्रप्रवर्त्तक तथा

ग गोत्रप्रवर्त्तक ।

सृष्टि प्रवर्त्तक यद्यपि प्रथम प्रकार के ही ऋषि होते हैं, तथापि अपने वंश विस्तार द्वारा अवान्तर सृष्टि के प्रवर्त्तक भी ये माने जाते हैं। गोत्रप्रवर्त्तकों का नाम तो 'मैं अमुक गोत्र का हूँ', ऐसा कहकर आज भी सब

स्मरण करते हैं और मन्त्र प्रवर्त्तकों के नाम 'सर्वानुक्रमणी' , 'बृहदेवता' नाम के ग्रन्थ में मन्त्रों के पाँच विभाग

बताये गये हैं—

क) भाववृत्त,

ख) देवस्तृति,

ग) आत्मस्तव,

घ) देवात्मस्तव और

ङ) और परस्पर संवाद।

जहाँ सृष्टि का निरूपण होभ्भ; वह 'भाववृत्त' कहा जाता है और जहाँ किसी प्राणरूप देवता की स्तुति हो, वह 'देवस्तुति' कही जाती है। कई जगह मन्त्रों में ऐसा भी प्रसंग आता है कि जहाँ वक्ता ऋषि अपने आपको प्राणदेवता रूप मान कर अपनी ही स्तुति करता है, जैसा 'वागाम्भृणीय' आदि सूक्तों में प्रसिद्ध है, वह 'आत्मस्तव' का तीसरा भेद कहा जायेगा। कहीं ऐसा भी होता है कि प्रवक्ता ऋषि प्राणरूप देवता की अपने ही मुख से स्तुति करवाता है, वह 'देवात्मस्तव' है। इसमें ऋषि और देवता एक ही है; क्योंकि वक्ता और प्रतिपाद्य दोनों एक ही हैं। पाँचवा भेद वह है, जहाँ देवता और ऋषि का 'परस्पर संवाद' माना जाना चाहिए। इन पाँचों प्रकारों में आदि के तीन में तो मन्त्रों के वक्ता ही ऋषि कहे जाते है; किन्तु शेष दो प्रकारों में भेद हो जाते है। चौथे प्रकार में वक्ता ऋषि अपनी और से स्तुति न कर देवता के मुख से ही देवता की स्तुति करवाता है और उसमें प्रतिपाद्य देवता को ही वक्ता—रूप से भी कल्पित किया गया है। पाँचवें 'परस्पर संवाद' के जिस मन्त्र में जिसकी उक्ति कही गई हो, वह ऋषि माना जाता है और जिसके प्रति कहा जाय, वह देवता मान लिया जाता है। इस अन्त के दोनों प्रकारों में वक्ता ऋषि कल्पित रूप से अन्य को ऋषि, अर्थात् वक्ता बना देता है। साहित्य शास्त्र में भी ऐसी प्रक्रिया देखी जाती है। अलंकारियों ने अर्थों के वहाँ तीन भेद किये हैं—

क. स्वतः सिद्ध अर्थ, अर्थात् जैसा लोक में देखा जाता है,

ख. कवि की प्रौढोक्ति से बनाया हुआ अर्थ और

ग. कवि के द्वारा किसी अन्य को वक्ता बनाककर उसकी प्रौढोक्ति से प्रकाशित कराया जाने वाला अर्थ।

इसे आलंकारियो ने 'काव्यनिबद्धवक्तृप्रौढ़ोक्तिसिद्ध' माना है। इसी प्रकार, मन्त्रों के चतुर्थ और पञ्चम भेदों में भी कल्पित प्रवक्ता ऋषि होते हैं और यह ऋषि शब्द का चौथे प्रकार वाला अर्थ है।

'विष्णुपुराण' आदि में कहे गये ऋषियों की स्त्रियाँ—ख्याति, भूति, सम्भूति, क्षमा, प्रीति आदि—ये सब चित्तवृत्ति रूप हैं। अतः, ये ऋषि आध्यात्मिक ऋषि कहे गये हैं। प्राणरूप ऋषि ही आध्यात्मिक रूप में प्रविष्ट होते हैं, अतः पूर्णोक्त चार प्रकारों में प्रथम प्रकार में ही इनका अन्तर्भाव करना चाहिए। किन्तु, आगे के प्रसंगों से सृष्टिक्रम में भी इनका उनयोग होता है, इसलिए तृतीय प्रकार के सृष्टि प्रवर्त्तक या गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि भी ये कहे जाते हैं।

ऋषियों की संख्या में जो भेद हैं, वह सम्मानित करने की दृष्टि है। इसीलिए 'विष्णुपुराण' के नौ ऋषियों के स्थान पर श्रीमद्भागवत ने 'नारद' का नाम जोड़कर

दस कर दिया है। नारद भक्तिमार्ग के आचार्य हैं और भागवत शुद्ध भक्ति प्रधान पुराण है, अतः, उसने आदि ऋषियों में नारद की भी गणना कर दी है। अस्तु;मनुस्मृति में मनु ने अपनी उत्पत्ति का विवरण लिया है। उसका आशय है कि हमने पूर्व में जिन मण्डलों का विवरण दिया है, वे सब प्रजापति रूप हैं। प्रत्येक प्रजापति में तीन भाग हैं––आत्मा, प्राण और पशु। केन्द्र में स्थित शक्ति प्रजापति की आत्मा होती है, जिसे श्रुतियों में 'नभ्य प्रजापति' कहा जाता है। उसी केन्द्र से चारों और प्राण फैलते हैं। वे प्राण जब भूत रूप में परिणत होकर मण्डल बना देते हैं, तब वह मण्डल बना देते हैं, तब वह मण्डल पशु कहा जाता है। वे प्राण समान रूप से चारों और फैलते है।इसलिए, सभी मण्डल वृत्त (गोलाकार) रूप में ही बनते हैं। किन्तु, उन मण्डलों से जो रश्मिरूप प्राण बाहर निकलते हैं, वे एक दिशा की और ही जाते हैं। अतः, वे पूर्ण नहीं होते। उन्हें श्रुति में 'अर्द्धेन्द्र' कहा जाता है। मनु नाम से इसी 'अर्द्धेन्द्र' का व्यवहार किया गया है। यही मनु सब प्राणियों का उत्पादक है, इसीलिए प्राणी गोलाकार न होकर एक तरफ लम्बमान हो बढ़ते हैं तथा उनके सभी अवयवों में समान शक्ति नहीं होती।वृक्ष आदि प्राणियों में स्पष्ट देखा जाता है कि आरम्भ में केवल वे एक खम्बे के समान ऊपर उठते हैं और पश्चात् कालक्रम से उनमें शाखा, पत्ते, फूल और फल निकलते हैं। इससे अनुमान होता है कि उनके उर्ध्वभाग में ही अधिक शक्ति है, अधोभाग में नहीं। गौ, घोड़ा आदि पशुओं के अग्रभाग में ही अधिक शक्ति देखी जाती है। इसी तरह मनुष्य के ऊपरी (मस्तक) भाग में ही ज्ञान की शक्ति होती है और ज्ञान की सभी इन्द्रियाँ इसी भाग में रहती हैं। मनुष्य की पीठ की लम्बी हड्डी को मेरुदण्ड कहा जाता है। इस मेरुदण्ड की तुलना सूर्य के 'विषुवद्वृत्त' (भ्रमण) के मध्य भाग से की गई है। यह कहा गया है कि 'अर्द्धेन्द्र' होने के कारण प्राणियों में पूर्णता नहीं होती।

गरुड़पुराण– यह एक वैष्णव पुराण है। इस पुराण को स्वयं विष्णु ने गरुङ के समक्ष सुनाया था, गरुङ ने कश्यप के समक्ष इसका प्रवचन किया। पुराण के पाँच लक्षणों में कुछ का समावेश इसमें है जैसे–सृष्टि, मन्वन्तर, सूर्य–चन्द्र–वंशावली। किन्तु इसका विपुलांश विष्णुपूजा, वैष्णव व्रत, प्रायश्चित तथा तीर्थ माहात्मय को ही समर्पित है।शक्ति पूजा पञ्चदेवों(विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश) की उपासना की विधि भी इसमें वर्णित है। गरुङपुराण पुर्वखण्ड और उत्तरखण्ड में विभक्त है जिनमें क्रमशः 229 तथा 35 अध्याय हैं। इसकी श्लोक संख्या 18 सहस्र श्लोक हैं। अग्निपुराण के समान इसका पूर्वखण्ड विश्वकोषात्मक है जिसमें रामायण महाभारत हरिवंश की विषय वस्तु, सृष्टिक्रम, ज्योतिष, सकुन, सामुद्रिकशास्त्र, छन्द, आयुर्वेद, व्याकरण, रत्न–परिक्षा, नीतिशास्त्र, दर्शन आदि का समावेश है। इसका उत्तरखण्ड 'प्रेतकल्प' कहलाता है। इसमें मृत्यु के अनन्तर, मृतक के घर में किया जाता है। गरुङपुराण की रचना हाजरा ने नवम शताब्दी ई. में मानी है। इसका उद्भवस्थान मिथिला है क्योंकि 'याज्ञवल्कयस्मृति' के अनेक श्लोक इस पुराण में कुछ परिवर्तनों के साथ आये हैं। इसके 107 वे अध्याय में 'पराशरस्मृति' का सार प्रस्तुत है।

मत्स्यपुराण– प्राचीनता तथा वर्ण्यविषय के विस्तार की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण पुराण है। पञ्चलक्षण की संगति होने से इसे प्राचीन माना गया है। पुराणों में यद्यपि इसकी श्लोक संख्या उन्नीस सहस्र कही गयी है किन्तु इसके वर्तमान संस्करणों में 291 अध्याय तथा 14000 श्लोक मिलते हैं।इसमें जलप्रलय का वर्णन है जिससे सभी प्राणियों की रक्षा मत्स्यरूपधारी विष्णु ने की थी।यह वर्णन आरम्भ के कुछ अध्यायों में है। मत्स्य और मनु के संवाद के रूप में पुराण का प्रकाशन हुआ है।इसमें पितरों, तीर्थयात्रा, भुवनकोशत्र दान–माहात्मय, राजधर्म, श्राद्ध तथा गोत्र प्रवरों का विस्तृत वर्णन है।इसके बहुत बङे अंश में (अध्याय 215–27) राजधर्म का वर्णन है जो

राजशास्त्र के अपेक्षित विषयों के विवेचन से सम्पन्न है।व्रत(48—102), प्रयाग—माहात्मय, राजधर्म, (103—12), काशी—माहात्मयय (180—5), नर्मदा—माहात्मय (186—94), शकुन विचार(228—38), देवप्रतिमा और मन्दिर निर्माण (258—70), दान (274—89) आदि पर लम्बे प्रकरण हैं। धार्मिक विषयों की दृष्टि से इसे शैव या वैष्णव दोनों कहा जा सकता है। इसमें कलियुग के राजाओं की सूचि दी गयी है। स्मिथ का कथन है कि आंध्र—नरेशों की जो सूची इस पुराण में दी गयी है, वह बहुत विश्वसनीय है। डॉ० हाजरा ने इसका रचनाकाल तीसरी शताब्दी ई० के उतरार्ध या चौथी शताब्दी के पूर्वार्ध में माना है। पी. वी. काणे इसकी उत्तरकाल सीमा छठी शताब्दी ई. तक मानते हैं।इस पुराण का एक उत्कृष्ट संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ गीता प्रेस से दो खण्डों में प्रकाशित है जो मूलतः'कल्याण'के अङ्कों में प्रकाशित हुआ था।

17,4 सारांश

इस इकाई में आप श्रीमद् भागवत्, अग्नि, विष्णु, गरूण एवं मत्स्य पुराणों का सामान्य परिचय दिया गया है इस पुराण का विभाजन 12 स्कन्धों में हुआ है। पूरे ग्रन्थ में 35 अध्याय तथा अठारह हजार श्लोक हैं। पुराणसाहित्य के रूप में सम्पूर्ण पुराण का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं; आवश्यकता के अनुसार पुराण का साहित्य बढ़ता गया और ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्—साहित्य क्रमशः विकसित हुए प्राचीन काल से लेकर आज तक सम्पूर्ण विश्व को अनेक प्रकार से धर्मोपदेश देता रहा है इसलिए इसके महत्त्वपूर्ण बातों को बताया गया है पुराण साहित्य में नास्तिकों ने पुराण की निन्दा भले किया है किन्तु पुराण साहित्य और जन—सामान्य का बहुसंख्यक वर्ग उसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से किया है। पुराणों से लोग अपने जीवन—दर्शन को संचालित कर सकते हैं। पुराण भारतीय धर्म के रत्न हैं। भारतीय धर्म ने पुराणों को इतना महत्व दिया है कि ईश्वर की निन्दा सहन कर सकते है किन्तु पुराण क़ी निन्दा नहीं। प्रचार की दृष्टि से सम्पूर्ण पुराण साहित्य में श्रीमद् भागवत् महापुराण अग्रणी हैं। देश विदेश के असंख्य विद्वानों ने पुराणों के प्रति आदर—भाव प्रकट किया है। इन सबका विशेष प्रकार से प्रयोग वर्णन किया गया है।

17.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
नगम	वेद
कल्प	कल्प
फलम्	फल को
विद्यावतां	विद्या की
भागवते	भागवत में
परीक्षा	परीक्षा

17.6 वहुविकल्पीय प्रश्न—उत्तर

1) पुराण—साहित्य में सर्वाधिक प्रचलित कृति है

   1 आगम　　2 वेद

   3 निगम　　4 भागवतपुराण　　(4)

2) भागवत महापुराणों का विभाजन हुआ है

1 वारह स्कन्द 2 तीन स्कन्द

3 दो स्कन्द 4 सात स्कन्द (1)

3) भागवत महापुराण में श्लोक हैं

1 अठारह सहस्र 2 तीन सहस्र

3 दो सहस्र 4 सात सहस्र (1)

4) भागवत महापुराण में प्रथम स्कन्ध में वर्णन है

1 ब्रह्म का 2 वेद का

2 आगम का 4 विराट् पुरुष (4)

4) भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध में वर्णन है

1 ब्रह्म का 2 वेद का

3 आगम का 4 विराट् पुरुष (4)

5) भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध में वर्णन है

1 ब्रह्म का 2 वेद का

3 वराहावतार की कथा 4 विराट् पुरुष (3)

17.7 अभ्यासार्थ प्रश्न – उतर

1) प्रश्न– दशम स्कन्ध इस पुराण का बृहत्तम भाग कितने अध्याय में है

उत्तर–90 अध्याय में

2) प्रश्न–एकादश स्कन्ध में किसका वर्णन है

उत्तर– यादवों के विनाश का

3) प्रश्न द्वादश स्कन्ध में किसका वर्णन है

उत्तर–कलियुग के राजाओं का

4) प्रश्न–अग्निपुराण किसे कहते है

उत्तर– अग्नि के द्वारा वशिष्ठ को उपदेश इसमें दिये जाने के कारण अग्निपुराण कहते है

5) प्रश्न– अग्निपुराण में कितने अध्याय है

उत्तर– 383 अध्याय

17.8 सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1) पुस्तक का नाम–संस्कृत साहित्य का इतिहास

लेखक का नाम– उमाशंकर शर्मा ऋषि

सम्पादक का नाम–उमाशंकर शर्मा ऋषि

प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी

2) पुस्तक का नाम–श्रीमद् भागवत महापुराण
   लेखक का नाम– गीता प्रेस गोरखपुर
   प्रकाशक का नाम– गीता प्रेस गोरखपुर
3) पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्य
   लेखक का नाम– पतंजलि
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
4) पुस्तक का नाम– वैदिक साहित्य
   लेखक का नाम– कपिलदेव द्विवेदी
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

17.9 उपयोगी पुस्तके

1) पुस्तक का नाम–संस्कृत साहित्य का इतिहास
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी
   लेखक का नाम– उमाशंकर शर्मा ऋषि
   सम्पादक का नाम–उमाशंकर शर्मा ऋषि
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी
2) पुस्तक का नाम– वैदिक साहित्य
   लेखक का नाम– कपिलदेव द्विवेदी
   प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
3) पुस्तक का नाम–श्रीमद् भागवत महापुराण
   लेखक का नाम– गीता प्रेस गोरखपुर
   प्रकाशक का नाम– गीता प्रेस गोरखपुर

17.10 निबधात्मक प्रश्न

1) अग्नि पुराण का वर्णन कीजिये